अनुपानतरंगिण्यनुक्रमणिका

अथ

नाड़ीज्ञानतरङ्गिणी

भाषानुवादसमलंकृता ।
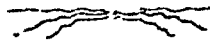
नत्वा श्रीराघवं देवं भूमिजारमणं हरिम् ।
रचयाम्ययि लोलाक्षि नाडीज्ञानतरङ्गिणीम् ॥१॥

ज्ञात्वा कालं बलं बाले नृणामाधुनिकं वयः ।
पराशरादिकर्षीणां वाक्यैः सिद्धांतिनामपि ॥२॥

नीरतीरादि रूपैश्च स्वर्णरत्नादिकैर्यथा ।
किरीटं भूमिपालानां महर्घैः सुषमाप्रदम् ॥३॥

टीका—अथ शकुनज्ञानतरंगिणी रचनानंतर, नाड़ी ज्ञान तरंगिणी रचता हूँ, तहाँ प्रथम निर्विघ्न समाप्त्यर्थस्व इष्टदेव राघवजी को नमस्कार करके मंगलाचरण करता हूँ, अथ श्लोकार्थ–हे लोलाक्षि, प्रथम भूमि पुत्री जो श्री जानकी जी तिनके पति

श्रीरघुकुलोत्पन्न रामचन्द्र साक्षात् हरि भगवान को नमस्कार करके और उनकी कृपा से इस समय का काल, मनुष्यों की अवस्था और बलको जान के फिर पराशरादि जो सिद्धाँतों को करने वाले ऋषि तिनके जो वाक्य वही जल और किनारे रूप हैं। उन करके यह नाड़ीज्ञानतरंगिणी मैं रचता हूँ। जैसे अमूल्य स्वर्ण रत्नादि करके राजाओं को परम शोभा देने वाला, मुकुट रचते हैं, तैसे ॥१॥२॥३॥

चापल्यं मे क्षमिष्यंति विद्वांसो गतमत्सराः ।
मूर्खाणां मत्सरवतां विरोधैः का क्षतिर्मम ॥४॥

टीका—हे प्रिये, जो विद्वान् और ईर्षा रहित हैं वे मेरी चपलता को क्षमा करैं और जो मूर्ख हैं और ईर्षा करने वाले हैं उनके विरोध से क्या मेरी हानि है अर्थात् कुछ भी हानि नहीं है ॥ ४ ॥

लोलाक्षी पृच्छति ।

वद भिषग्वर कंजविलोचन
पवनपित्तकफैर्धमनीगतिम् ।
तव मुखाब्जवचोऽमृतपानतो
भवति मे मनसि प्रवरं सुखम् ॥५॥

टीका—लोलाक्षी पूछती है, हे वैद्य श्रेष्ठ, हे कमलनयन, वातपित्त कफ करके जो जो नाड़ी की गति होती है सो सो कहो, तुम्हारे मुखरूप चंद्रमा से वचन रूप अमृतपान करने से मेरे मनमें परम सुख होता है ॥ ५ ॥

केचिद्वातं वदंत्यादौ केचित्पित्तं भिषग्वराः ।
निश्चितं ब्रूहि कश्चादौ को मध्येऽन्ते च कः पृथक् ॥६॥

टीका—कितने विद्वान् वैद्य आदि में वात कहते हैं, कितने पित्त कहते हैं, तहाँ आप निश्चय करके कहो कि, कौन दोष आदि में और कौन मध्य में और कौन अन्त में है सो पृथक् कहो ॥६॥

के देवाः संति नाडीनां कथं तांश्च परीक्षयेत् ।
अनापृष्टं च यत्किंचित्तदपि प्रवद प्रिय ॥७॥

टीका—हे प्रिय, वात, पित्त कफ इनकी नाडियोंके देवता कौन हैं, और नाड़ी की परीक्षा कैसे करना ? और भी जो मैंने न पूछा हो सो भी कहो ॥ ७ ॥

रघुनाथप्रसादः ।

अयि शृणु कुंजगामिनि कांते ऋषिवचनानि
वदाम्यहमद्धा ॥ घनकुचयुग्मवरे विधुवक्त्रे ॥
मति मति बुद्धिमदात्मभवा त्वम् ॥८॥

टीका—अयि कुँजरगामिनि, हे कांते, तुम सुनो, मैं साक्षात् ऋषियों के वचन कहूँगा, हे घनकुच युग्मवरे, हे चन्द्र वदने, हे बुद्धिमति, तुम बुद्धिमान की पुत्री हो, इस वास्ते प्रीति युक्त सुनो ॥ ८ ॥

श्रीश्रीनिवासतातार्यः सुप्रसन्नो मयिस्थितः ।
रघुनाथप्रसादोऽपि कवित्वेऽतोऽश्रमं क्षमः ॥९॥

टीका—श्रीश्रीनिवास तातार्य, अति प्रसन्न मेरे हृदय में स्थित हैं; इस वास्ते मैं कविता में विना श्रम समर्थ हूँ, यहाँ केवल गुरु कृपामात्र समर्थता का कारण है, यह निश्चय जानौ ॥९॥

वातिकायाः पतिर्ब्रह्मा पैत्तिकायास्त्रिशूलधृक् ।
श्लैष्मिकायाः पतिर्विष्णुर्वदंतीति विपश्चितः ।१०।

टीका—वायुकी नाड़ी का देवता ब्रह्मा है, पित्त की नाड़ी का शिव देवता है, कफ की नाड़ी का विष्णु देवता है ॥ १० ॥

वातिकायाः पतिर्वायुः पैत्तिकाया दिवाकरः ।
श्लैष्मिकायाः पतिश्चंद्रोवदंतीति मुनीश्वराः ॥११॥

अन्यच्च-

टीका—और भी मुनीश्वर कहते हैं; वायु की नाड़ी का वायु देवता है, पित्तकी नाड़ी का सूर्य है, कफकी नाड़ी का चन्द्र देवता है ॥ ११ ॥

अथ नाडीज्ञानयोग्यवैद्यः ॥ स्थिरचित्तो निरोगश्च सुखासीनः प्रसन्नधीः ॥ नाडीज्ञानसमर्थः स्यादित्याहुः परमर्षयः ॥१२॥

टीका—स्थिरचित्त, निरोग, सुखसे बैठा हुआ, प्रसन्नबुद्धि ऐसा वैद्य नाडीज्ञानमें समर्थ होता है, ऐसे श्रेष्ठ ऋषि कहते हैं ॥१२॥

अथ नाडीज्ञानायोग्यवैद्यः ॥ पीतमद्यश्चंचलात्मा मलमूत्रादिवेगयुक् ॥ नाडी ज्ञानेऽसमर्थ स्याल्लोभाक्रांतश्चकामुकः ॥१३॥

टीका—अथ नाड़ीज्ञान में असमर्थ वैद्य कहते हैं जिसने मदिरा पिया हो और जिसका मन चंचल हो और जिसको मलमूत्रादि त्यागने की इच्छा होरही है और जिसको लोभ अत्यन्त हो और काम करके पीड़ित हो सो वैद्य नाड़ी ज्ञान में असमर्थ है ॥१३॥

अथ नाड़ी द्रष्टुं योग्यो रोगी ॥ त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः। अंतर्जानु करस्यापि नाड़ीं सम्यक्परीक्षयेत् ॥१४॥

टीका—जो मल और मूत्र त्याग के सुख से बैठा हो और दोनों जानुओं के बीच में हाथ किये हो उस रोगी की नाड़ी अच्छी तरह से परखनी।१४।

अथ नाड़ीं द्रष्टुमयोग्यः ॥ सद्यः स्नातस्य भुक्तस्त तथा तैलावगाहिनः॥ क्षुत्तृषार्तस्य सुप्तस्य नाड़ी सम्यङ्न बुद्ध्यते ॥१५॥

टीका—जो तत्काल स्नान किया हो वा भोजन किया हो अथवा तेल मर्दन कराया हो अथवा भूखा पियासा हो अथवा सोता हो उसकी नाड़ी अच्छी तरह से देखने में नहीं आती है ॥१५॥

अथ स्त्रीपुंसोर्नाडीज्ञानभेदमाह ॥
योषितो वामभागस्य दक्षिणस्य च नुर्भिषक् ।
पश्येत्स्वानुभवान्नाडीमभ्यासेनापि रत्नवत् ॥ १६ ॥

टीका—अब स्त्री पुरुषों की नाड़ी का भेद कहते हैं. स्त्री के वाम अंग में और पुरुष के दक्षिण अंग में वैद्य साक्षात् अपने अनुभव करके और अभ्यास करके जानै, जैसे जौंहरी रत्न की परीक्षा स्वानुभव और अभ्यास करके करता है ॥ १६ ॥

अस्य भेदस्य कारणं तंत्रांतरे चोक्तम् ।
कूर्मो वै देहिनामस्ति नाभिस्थाने सदा स्थितः ॥
स्त्रीणामूर्ध्वमुखः पुंसामधोवक्त्रः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
तस्यैव दक्षिणे भागे नाडी ज्ञेया भिषग्वरैः ॥
अनेन कारणेनैव नारीपुंसोर्व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥

टीका—जो कहा कि, पुरुष के दाहिने और स्त्री के वामे अंग में नाड़ी का निश्चय करना चाहिये सो इसका कारण यही है कि, देहधारी मात्र के नाभि स्थान में कूर्म सदा रहता है, सो स्त्री के ऊर्ध्व मुख रहता है और पुरुष के अधोमुख रहता

है, उसी कूर्म के दाहिने भाग में वैद्यों करके नाड़ी जानने योग्य है; इस वास्ते स्त्री से पुरुष के व्यति क्रम है ॥१७॥१८॥

अथ नाडीस्पर्शनविधिः ॥ वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमुच्य च ॥ विमर्श्य बहुधा बुद्ध्या ततो रोगं विनिर्दिशेत् ॥१६॥

टीका—वैद्य रोगी की नाड़ी पर तीन बार अंगुली धर धर और उठा उठा के अच्छी तरह से बुद्धि में विचारले फिर रोग कहै ॥१६॥

अन्यच्च ॥ ईषद्विनामितमये विततांँगुलिंच वाले निगृह्य करमामयिनो जनस्य ॥ पुंसोऽपसव्यमपि सव्यकरेण पश्यन्नाड्याँच शश्वदपसव्यकराँगुलीभिः ॥२०॥ पित्तं समीरणमथो हि कफं क्रमेण ह्यंगुष्ठमूलत इति प्रवदंति वैद्याः ॥ नार्यास्तु वाममपसव्यकरेण धीरः संगृह्य सव्यकरकाँगुलिभिस्तथैव ॥२१॥

टीका—अब नाड़ी स्पर्श करने की विधि कहते हैं, रोगी पुरुष के दाहिने हाथको सीधो अंगुली

करके और किंचित् नवा के अपने वामे हाथ से पकड़ के नाड़ी के विषे अंगुष्ठ की मूल से लेके अपने दाहिने हाथ की तीन अंगुली रख करके क्रम से तर्जनी के नीचे पित्त, मध्यमाके नीके वायु, अनामिका के नीचे कफ़ को देखना ऐसे वैद्य कहते हैं, और स्त्री का वाम हस्त अपने दाहिने हाथ से पकड़ के उसी क्रमसे अपसे अपने वाने हाथ की अंगुलियो से देखना चाहिये ॥२०॥२१॥

उक्तं च पराशरसनत्कुमाराभ्याम् ॥
वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला ॥
अंते श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥२२॥

टीका—वाताधिक नाड़ी मध्य में चलती है, पित्ताधिक आदि में वहती है, कफ़ोधिक अंत में बहती है और मिश्रित होने से मिश्रित चलती है ॥२२॥

अत्र दृष्टांतः ॥ तृणं पुरः सरं कृत्वा यथा वातो वहेद्बली ॥ स्वानुगं च तृणं गृह्य पृथिव्या वक्रगो यथा ॥२३॥ एवं मध्यगतो वायुः कृत्वा

पित्तं पुरः सरम् ॥ स्वानुगं कफमादाय नाड्यां वहति सर्वदा ॥२४॥ अतएव च पित्तस्य ज्ञायते चपला गतिः ॥ वक्रा प्रभंजनस्यापि वैद्यै र्मन्दा कफस्यच ॥२५॥ वाताग्रेऽस्ति गतिः शीघ्रा तृणस्येति विदृश्यताम् ॥ मंदानुगस्य वक्रा वै मरुतो मध्यगस्य ह ॥२६॥ तथाऽत्रैव च ज्ञातव्या गतिर्दोषत्रिकोभ्दवा ॥ नान्यथा ज्ञायते स्नायुर्गतिरेतद्विनिश्चितम् ॥२७॥

टीका—यहां दृष्टांत देते हैं, जैसे पृथ्वी में जब अति प्रबल पवन चलता है तब देखने में आता है कि, तृण को अगाड़ी भी बड़े वेग से उड़ाता जाता है. और पिछाड़ी को भी तृण खींचता जाता है, और आप बीच में वक्रगति से चलता है ॥२३॥ ऐसे नाड़ी में सर्वदा आप मध्य में वक्रगति से रह के पित्त को अगाड़ी करके कफ को पिछाड़ी लिये चलता है ॥२४॥ इसी वास्ते पित्तकी चपलगति वैद्यों करके जानने में आती है और वायु की वक्रगति कफ की मन्द गति जानी जाती है ॥२५॥ देखो प्रसिद्ध है कि जब जोर से हवा चलती है,

जिसको लोग आँधीकहते हैं, उसके अगाड़ी जो तृण उड़ता है सो बड़े वेग से चलता है, और जो पीछे उड़ता है सो मन्द गति से चलता है, बीच में वायु आड़ा टेढ़ा घूमता चलता है ॥२६॥ तैसे ही यहाँ भी नाड़ी में वात पित्त कफ़की गति जाननी चाहिये; और तरह से नाड़ी को गतिका बराबर निश्चय नहीं होता है ॥२७॥

तदिदं कारणम् ॥ पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ॥ वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षंति मेघवत् ॥२८॥

टीका--तिसका यह कारण है कि, पित्त और कफ पंगुले हैं और भी मलधातु पंगुले हैं; जहां वायु ले जाता है वहां मेघ की नाईं वर्षते हैं, ऐसे यहाँ भी वायु के आधीन पित्तादिक हैं॥२८॥

अथ स्वस्थस्य नाड़ीलक्षणम् ॥ भूनागसदृशी प्रायः स्वच्छा स्वस्थस्य वै शिरा ॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥२९॥

टीका--स्वस्थ सुखी की नाड़ी केंचुवा जंतु-

सरीखी बहुधा चलती है और स्वच्छ, स्थिर यत्न संयुक्त होती है ॥२६॥

प्रातःस्निग्धा शिराज्ञेया मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता।
सायाह्ने धावमाना च सदा रोगविवर्जिता ॥३०॥

टीका—रोग रहित नाड़ी प्रातःकाल में स्निग्ध यानी स्थिर सचिक्कन सदा रहती है, मध्यान्ह में उष्णतायुक्त, सायंकाल में शीघ्रगति होती है ॥३०॥

अथ नाड्या गतिरुच्यते ॥ वाताद्वक्रगतिर्नाड़ी पित्ताच्चपलगा भवेत् ॥ कफान्मंदगतिश्चैषा मिश्रिते मिश्रगा तथा ॥ ३१ ॥

टीका—वात से नाड़ी वक्रगति होती है, पित्त से चंचल होती है, कफ से मंदगति होती है, मिश्रित से मिश्रित होती है, ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ॥ सर्पजलौकादिगतिं वदंति हि बुधाः प्रभंजनेन नाडीम् ॥ पित्ते च काकलवकभेकादि गतिं तथा चपलाम् ॥ ३२ ॥

टीका—वातरोग में सर्प और जलौकादिक की

गति चलती है, पित्तरोग में काक, लाव, मेडूक इत्यादि गति और चपल चलती है, ऐसे ज्ञानी कहते हैं ॥ ३२ ॥

राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः ।
कुक्कुटादिगति धत्ते धमनी कफसंगता ॥३३॥

टीका—राजहंस, मोर, कबूतर पडूखो और कुक्कट (मुरग) इनकी गति से कफकी नाड़ी चलती है ॥ ३३ ॥

सर्पादिगतिकां नाडीं काकादिगतिकां तथा ।
वातपित्तामयोमिश्रां प्रवदंतिभिषग्वराः ॥३४॥

टीका—जो नाड़ी कही सर्पादिक गति और कही काकादिक गति मिश्रित चलैं तिसको वैद्य श्रेष्ठ वातपित्त मिश्रिल रोग को कहते हैं ॥ ३४ ॥

दंदशूकगतिं नाडीं कदाचिद्धंसगामिनीम् ।
कफवातामयोन्मिश्रां प्रवदंतिभिषग्वराः ॥३५॥

टीका—जो नाड़ी कदाचित् सर्पगति और कदाचित् हंसगति से चलति है उसको श्रेष्ठ वैद्य कफ वातमिश्रित रोगकी कहते हैं ॥ ३५ ॥

मंडूकादिगतिं नाडीं कदाचिद्धंसगामिनीम् ।
कफपित्तामयोन्मिश्रां प्रवदंति भिषग्वराः ॥३६॥

टीका—जो नाड़ी कदाचित् मेढ़क की गति और कदाचित् हंसकी गति से चलति है उसको श्रेष्ठ वैद्य कफ पित्त की नाड़ी कहते हैं ॥ ३६ ॥

अन्येऽप्याहुः ॥ क्षणे वक्रा क्षणे तीव्रा मध्यमातर्जनीतले ॥ स्फुटा भवति सा नाडी वातपित्तगदोद्भवा ॥ ३७ ॥

टीका—जो नाड़ी क्षण में वक्र और क्षणमें तीव्र गति से तर्जनी और मध्यमा के नीचे प्रकट होती है सो वातपित्त रोग की है ॥ ३७ ॥

स्फुटा वक्रा च मंदा च मध्यमानामिकातले ।
या भवेत्सा हि विज्ञेया कफवातसमुद्भवा ॥३८॥

टीका—जो नाड़ी क्षणक्षण में वक्र और मंद-गति से मध्यमा और अनामिका के नीचे प्रकट होती है सो वातकफ की है ॥ ३८ ॥

क्षणे मंदा क्षणे तीव्राऽनामिकातर्जनीतले ।
स्फुटा स्यात्साधरा ज्ञेया कफपित्तसमुद्भवा ॥३९॥

टीका—जो नाड़ी क्षण में तीव्र और क्षणमें मंदगति से अनामिका और तर्जनी नीचे प्रकट होती है सो कफ पित्त की है ॥ ३९ ॥

अन्ये चान्यरीत्या स्फुटमाहुः ॥
वातस्थाने च या तीव्रा वातपित्तगतोद्भवा ॥
मंदा वातकफोन्मिश्रा मध्यमाधो हि नाडिका॥४०॥

टीका—जो नाड़ी मध्यमा अंगुली के नीके जो वात स्थान है तहाँ तीव्र चलै तो वातपित्त की और मंद चलै तो वातकफ को जानना ॥ ४० ॥

पित्तस्थाने च या वक्रा पित्तवातोद्भवा च सा ॥
मंदा पित्तकफांतकसंभवा तर्जनीतले ॥४१॥

टीका—जो नाड़ी तर्जनी के नीचे पित स्थान में वक्र चलै तो पित्तवात और मंद चलै तो पित्तकफ-संभव है यह जानना ॥ ४१ ॥

कफस्थाने च या तीव्रा कफपित्तगदोद्भवा ।
वक्रा श्लेष्ममरुन्मिश्रांऽतके सानामिकातले ॥४२॥

टीका—जो नाड़ी अनामिका के नीचे कफ

स्थान में तीव्र चलती हो सो कफ पित्तकी और वक्र हो सो कफ वात की जानना ॥ ४२ ॥

अथ ज्वरकामादिनाडीलक्षणम् ।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ।
कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥४३॥

टीका—अथ ज्वर और कामदिक के नाड़ी लक्षण कहते हैं, ज्वर के कोप से नाडी उष्णता और वेग युक्त होती है, काम और क्रोध से वेग युक्त होती है, चिन्ता और भयकी नाड़ी क्षीण होती है ४३ ॥

मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ।
असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥४४॥

जिसकी जठराग्नि मंद और धातु क्षीण होती है उसकी नाड़ी अतिमंद चलती है, जिसके रक्त विकार है उसकी नाड़ी पत्थरसी भारी और किंचित् गरम चलती है । और आमरोगयुक्त नाड़ी भारी लदे भैंसे की चालपर होती है ॥४४॥

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ।
क्षुधितस्य स्थिराज्ञेया तथा बलवती स्मृता ॥४५॥

टीका—जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त है उसकी नाड़ी हलकी और वेगयुक्त चलती है और सुखकी नाड़ी स्थिर और बलयुक्त होती है ॥ ४५ ॥

अथ सन्निपात नाडीलक्षणम् ॥

लावतित्तिरवर्तीकगमना सन्निपाततः ॥
अंगुलीत्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सा धरा ध्रुवम् ।४६।

टीका—जो नाड़ी लावपक्षी तित्तिर और बटेर की गति से चलती है सो सन्निपात की तीनों अंगुलियों के नीचे प्रसिद्ध होती है ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ॥ काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टते चातिवेगतः ॥ स्थित्वा स्थित्वा तथा नाड़ी सन्निपाते भवेद्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

टीका—जैसे कठफोरा पक्षी अतिवेग से काठको रह रह के फोरता है तैसे सन्निपात में नाड़ी होती है ॥ ४७ ॥

अथ साध्यासाध्यविचारः ॥

स्पंदते चैकमानेन त्रिंशद्वारं यदा धरा ॥
स्वस्थानेन तदा नूनं रोगी जीवति नान्यथा ॥४८॥

टीका—जो नाड़ी एकलाग निरंतर अपने स्थानपर तीसबेर फरकै तौ रोगी जीवै, नहीं तौ नहीं ॥४८॥

अथासाध्यनाडीलक्षणम् ॥

स्थिरा नाड़ी भवेद्यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्षते ॥
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये मृत्युरेव च ॥४६॥

टीका—जिसकी नाड़ी स्थिर हो और बिजली सरीखी रहरह के चलै तिसकी आयु एक दिनकी है, दूसरे दिन मृत्यु है ॥ ४६ ॥

अतिसूक्ष्मातिवेगा वा शीतला च भवेद्यदि ॥
तदा वैद्यो विजानीयादयं रोगी विनश्यति ॥५०॥

टीका—जिसकी नाड़ी अतिसूक्ष्म अथवा अतिवेग से चलती है उसको वैद्य ऐसा जानै कि, यह रोगी मरेगा ॥ ५० ॥

तिर्यगुष्णा च या नाड़ी सर्पवद्वेगवत्तरा ।
कफपूरितकंठस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥५१॥

टीका–जिसकी नाड़ी वक्र और सर्पसरीखी अतिवेग से चलती हो और कंठ कफ करके भरा हो तिस रोगी का जीवना दुर्लभ है ॥ ५१ ॥

दृश्यते चरणे नाड़ी करे नैव विदृश्यते ॥
मुखं विकसितं यस्य जीवितं तस्य दुर्लभम्॥५२॥

टीका—जिसके पगकी नाड़ी चलती हो और हाथकी न चलती हो और मुख फैली रहा हो तिस रोगी का दुर्लभ जीवना है ।

कंपते स्पंदतेऽत्यंतं पुनः स्पृशति चांगुलीः ॥
तामसाध्यां विजानीयान्नाडीं दूरेण वर्जयेत् ॥५३॥

टीका—जिसकी नाड़ी कंपयुक्त चलती चलती रहजाय और फिर अंगुलियोंको स्पर्श करै तिसकी नाड़ी असाध्य जानके दूरहीसे त्याग दे ॥ ५३ ॥

शीघ्रा नाड़ीमलोपेता शीतला वाथ दृश्यते ।
द्वितीये दिवसे मृत्युस्तस्य नुर्भवति ध्रुवम् ॥५४॥

टीका—जिसकी नाड़ी शीघ्र और मलयुक्त चलती हो या शीतल अर्थात् ठण्डी चलती हो तिसकी मृत्यु दूसरे दिन जरूर होती है ॥५४॥

मुखे नाड़ी वहेत्तीव्रा कदाचिच्छितला वहेत् ॥
आयाति पिच्छिलः स्वेदः सप्तरात्रंस जीवति। ५५।

टीका—जिसकी नाड़ी अग्रभाग में अतिशीघ्र चलती हो और कदाचित् ठण्डी हो और देह में चिकटा पसीना आता हो रोगी सात दिन जीवै।५५॥

मुखे नाड़ी यदा नास्ति मध्ये शैत्यं बहिः क्लमः॥
यदा मंदा वहेन्नाड़ी स त्रिरात्रं न जीवति॥५६॥

टीका—जिसकी पित्तनाड़ीनष्ट होगई हो और बाहर ग्लानि हो और नाड़ी मन्द चलती हो सो तीन रात्रि न जीवेगा ॥ ५६ ॥

शीघ्रा नाड़ी मलोपेता मध्याह्नेऽग्निसमो ज्वरः॥
दिनैकं जीवितं तस्त द्वितीयेऽह्नि म्रियेत सः ५७।

टीका—जिसकी नाड़ी मलयुक्त हो और मध्याह्न में अग्नि तुल्य ज्वर हो सो एक दिन जीवै॥५७॥

हिमवच्छीतला नाड़ी ज्वरदाहेन तापिनः ॥
त्रिदोषरुग्विभजतो मृत्युरेव दिनत्रयात् ॥ ५८ ॥

टीका—जिसकी नाड़ी हिम सरीखी ठण्डी हो और जो ज्वर के दाह करके तपायमान हो और त्रिदोष रोग को प्राप्त भयी हो तिसकी मृत्युतीन दिन में है ॥ ५८ ॥

स्वथानविच्युता नाड़ी यदा वहति वा न वा ॥
ज्वाला च हृदये तीव्रा तदा ज्वालावधिस्थितिः।५६।

टीका—जिसकी नाड़ी स्थान छोड़ के कभी चलै कभी न चलै और हृदय में तीव्र ज्वाला हो तो जहां तक ज्वाला है तहां तक जीता है ॥५६॥

अंगुष्ठमूलतो बाह्ये द्व्यंगुले यदि नाड़िका ।
प्रहरार्धाद्बहिर्मृत्युं जानीयाच्च विचक्षणः ॥६०॥

टीका—अंगुष्ठ के मूल से दो अंगुल छोड़ के जो नाड़ी हो तो आधे पहर पीछे मरै ॥ ६० ॥

मध्ये रेखासमा नाड़ी यदि तिष्ठति निश्चला ॥
षड्भिश्च प्रहरैस्तस्य मृत्युर्ज्ञेयो विचक्षणैः ॥६१॥

टीका—जिसकी नाड़ी वात स्थान में जो रेखा सरीखे निश्चल चलती हो तिसकी छः पहर में मृत्यु है ॥ ६१ ॥

मंदं मंदं शिथिलशिथिलं व्याकुलंव्याकुलं वा स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति सूक्ष्मा नराणाम् ॥ नित्यं स्थानात्स्खलति पुनरप्यंगुलीः

संस्पृशेद्वा भावैरेवं बहुविधतरैः सन्निपाते त्वसाध्या ॥ ६२ ॥

टीका—जिन मनुष्यों की नाड़ी मन्द और शिथिल शिथिल और व्याकुल चलती हो और रह रहके अतिसूक्ष्म और निरन्तर स्थानको छोड़के फिरभी अंगुलियों को स्पर्श करै ऐसे अनेक लक्षण युक्त सन्निपातकी नाड़ी असाध्य है ॥ ६२ ॥

अथ चैतादृशलक्षणापि अनया गत्या साध्या ॥
पूर्वं पित्तगतिं प्रभंजनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीं
स्वस्थानाभ्द्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्रादिरूढामिव॥
तीव्रत्वं दधतीं कदाचिदपि वा सूक्ष्मत्वमातन्वतीं
नाऽसाध्यां धमनीं वदंति सुधियो नाड़ीगति-ज्ञानिनः ॥ ६३ ॥

टीका—अब ऐसे लक्षण युक्त नाड़ी भी इस रीति से साध्य है । सो कहते हैं. जो नाड़ी स्पर्श समय में प्रथम पित्तगति, फिर बातगति, फिर कफ गति, चलै और अपने स्थानसे भ्रमती हुई वारंवार जैसे चक्रपर स्थित होती है । ऐसे चलै कभी तीव्र

और फिर सूक्ष्म भी चलै, तो इस नाड़ी को नाड़ी ज्ञान वाले असाध्य नहीं कहते हैं ॥ ६३ ॥

भारप्रवाहमूर्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाड़ी ॥
संमूर्छितापि गाढं पुनरपि सा जीवितं धत्ते॥६४॥

टीका–भार ले चलने से, मूर्च्छा से, भय से शोकसे जो नाड़ी मूर्च्छित भी होती है तो भी साध्य है।६४।

भूतावेशयुतस्यापि नष्टशुक्रस्य नाड़िका ॥
त्रिदोषगमना चापि सूक्ष्मा चापि न मृत्युदा।६५।

टीका—भूतावेशयुक्तकी और धातुक्षीण की नाड़ी त्रिदोषगतो भी चलती है, और सूक्ष्म तो भी मृत्यु दायक नहीं है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानहीना शोके च हिमाक्रांते च निर्गदा ॥
भवंति निश्चला नाड्यो न किंचित्तत्र वै भयम्६६

टीका—शोक में, और शीतल गमन में स्थिर नाड़ी हो तो भी भय नहीं है ॥ ६६ ॥

स्तोकं वातकफं नष्टं पित्तं वहति दारुणम् ।
पित्तस्थानं विजानीयात्तत्र भेषजमाचरेत् ॥६७॥

टीका- थोड़ा वात और कफ़ नष्ट भया हो और पित्त दारुण चले तो औषध करना ॥ ६७ ॥

स्वस्थानच्च्यवनं यावद्धमन्या नोपजायते ॥
तत्स्थचिह्नस्य सत्वेऽपिनाऽसाध्यत्वमितीरितम्॥६८॥

टीका- जहां तक नाड़ी बिलकुल स्थान भ्रष्ट न हो और चिन्ह त्रिदोषका हो तो भी असाध्य नहीं है ॥ ६८ ॥

अथाहारवशान्नाड्या गतिरुच्यते ॥
पुष्टिस्तैलगुडाहारे माषे च लगुडाकृतिः ॥
क्षीरे स्तिमितवेगा च मधुरे हंसगामिनी ॥६९॥

टीका--अब आहार के वश में नाड़ी गति कहते हैं, तेल और गुड़ खाने से नाड़ी पुष्ट होती है और उड़द खाने से लकुट से आकार होती है, दूध खाने से मन्दगति होती है और मिष्ट भोजन से हंस की गति होती है ॥ ६९ ॥

मधुरे बर्हिगा नाड़ी तिक्ते स्थूलगतिर्भवेत् ।
अम्ले भेकगतिः कोष्णा कटुकैर्भृङ्गसन्निभा॥७०॥

टीका-मधुर भोजन से नाड़ी मयूरगति होती है,

तिक्त भोजन से स्थूलगति होती है, खटाई से किंचित् उष्ण और मेडुककी गति चलती है, कडुये से भ्रमर की गति चलती है ॥ ७० ॥

कषाये कठिना म्लाना लवणे सरलाद्रुता ।
एवं द्वित्रिचतुर्योगे नानाधर्मवती धरा ॥७१॥

टीका—कषैले भोजन से कठिन और मलिन अर्थात् किंचित् मंद चलती है. लवण रस भक्षण से सरल और शीघ्रगति होती है. ऐसे ही दो, तीन, चार वा सर्व मिलने से नाना प्रकारकी गति होती है ॥ ७१ ॥

द्रवेऽतिकठिना नाडी कोमला कठिनाशने ॥
द्रवद्रव्यस्य काठिन्ये कोमला कठिनापि च ॥७२॥

टीका—द्रव अर्थात् पतला जैसे कठिन इत्यादि भक्षण करने से अति कठिन नाडी चलती और कठिन आहार से कोमल चलती है. और जो द्रव-द्रव्य कठिनता लिये हो तौ कोमल और कठिन भी चलती है ॥ ७२ ॥

द्रव्यैश्च मधुराम्लाद्यैर्नाडी शीताविशेषतः ॥
चिपिटैर्भ्रष्टद्रव्यैश्च स्थिरा मन्दतरा भवेत् ॥७३॥

टीका- मीठे और खट्टे मिश्रित से नाड़ी विशेष करके ठण्डी रहती है और चूरा जिनको पौहा भी कहते हैं इनसे औसिके चर्वणसे स्थिर और मन्द होती है ॥ ७३ ॥

कूष्मांडैर्मूलकैश्चैव भवेन्मन्दा हि नाड़िका ॥
शाकैश्च कदलैश्चैव रक्तपूर्णेव सा भवेत् ॥७४॥

टीका-कूष्मांड और मूली से नाड़ी मंद होतीहै। शाक अरु केले से रक्त पूर्ण जैसो होती है ॥ ७४ ॥

मांसात्स्थिरवहा नाड़ी दुग्धाच्छीता वलीयसी ॥
गुडक्षीरैः सपिष्टैश्च स्थिरा मंदा धरा भवेत् ॥७५

टीका—मांस खाने से नाड़ी स्थिर, दूध से ठण्ड और बलयुक्त, गुड, दूध और पिष्ट से स्थिर और मन्द होती है ॥ ७५ ॥

मैथुनांते भवेच्छीघ्रा सरलापि च नाड़िका ॥
मलाजीर्णेन नितराँ स्पंदते तंतुसन्निभा ॥७६॥

टीका—मैथुनांत में नाड़ी शीघ्र और सरल चलती है और मलाजीर्ण में तंतु सरीखी किंचित् चलती है ॥ ७६ ॥

व्यायामे भ्रमणे चैव चिंतायां धनशोकतः ॥
नाना प्रकारगमना जीवितज्ञा भवेद्ध्रुवम् ॥७७॥

टीका—कसरत करने में, फिरने में; चिंता में धनके शोक में, नाड़ी की नाना प्रकार की गति होती है ॥ ७७ ॥

अजीर्णे तु भवेन्नाड़ी कठिना परितो जडा ॥
पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मंदं मंदं प्रवर्तते ॥७८॥

टीका—अजीर्ण में नाड़ी कठिन और जड़ होती है और पक्का जीर्ण में पुष्टिहीन और मंदगति से चलती है ॥७८॥

विषूचिकाऽभिभूते च नाड़िका भेकसंक्रमा ॥
प्रमेहे चोपदंशे च ग्रंथिरूपा धरा स्मृता ॥७९॥

टीका—विषूचिका रोग में नाड़ी मंडूकगति चलती है, प्रमेह और उपदंश में ग्रंथिरूप चलती है ॥ ७९ ॥

प्रदरे रक्तपित्ते च श्वेते ग्रंथिवदच्छति ॥
क्षतकासे तथा राजयक्ष्मणिग्रंथिरूपिणी ॥८०॥

टीका—श्वेत प्रदर, रक्त पित्त और क्षत, काम तथा क्षयी रोग में ग्रंथिरूप चलती है ॥ ८० ॥

वांतस्य शल्याभिहतस्य जंतोर्वेगावरोधाकुलितस्य चैव । गतिं विधत्ते धमनीगजेंद्रमराकानां च कफोल्वणस्य ॥ ८१ ॥

टीका—जिस पुरुष ने वांति की हो अथवा जिस के तीर वगैरे लगा हो अथवा जो मलादिक से व्याकुल हो अथवा जिसके कफ बहुत हो वेग उसकी नाड़ी हाथी और हंस की गति से चलती है

अथान्यमतानुसारेण स्वस्थनाड़ीलक्षणम् ॥

अयि प्रिये शृणुष्व वै वदाम्यहं मतांतरम् ॥
नरस्य जन्मकालतो ह्यशीतिवत्सरावधि ॥
शिशोर्हि जन्मकालतः पलावधि प्रकंपते ॥
धरा रसेषु वारकं निरंतरं शिशुप्रिये ॥८२॥

टीका—हे प्रिये, अब मैं मतांतर से स्वस्थनाड़ी का लक्षण कहता हूँ, जन्म काल से अस्सी वर्षपर्यंत कहता हूँ जन्मकाल से एक पलपर्यंत में नाड़ी ५६ छप्पन वार फड़कती है ॥ ८२ ॥

पलादारभ्य वर्षांतं पलैकेन च नाड़िका ॥
नेत्रैषु कृत्वश्चलति मत्तकुंजरगामिनी ॥ ८३ ॥

टीका—जन्म कालसे पलपर मितकाल पीछे एक वर्षपर्यंत एक पल में बावन५२बेर चलती है॥८३॥

अब्दादब्दद्वयं नाड़ी पलैकेन प्रवेपते ॥
वेदाब्धिवारं लोलाक्षि चलत्कुंडलशालिनि॥८४॥

टीका—एक वर्ष पीछे दो वर्ष पर्यंत एक पल में नाड़ो चौवालीश ४४ बेर कंपती है ॥ ८४ ॥

वर्षद्वयात्त्रिवर्षांतं पलैकेन च तंतुकी ॥
खवेद कृत्वश्चलति पीनोत्तुँगपयोधरे ॥ ८५ ॥

टीका—दो घर्ष पीछे तीन वर्ष तक एक पल में चालीस ४० बेर नाड़ी चलती है ॥८५॥

त्रिवर्षात्सप्तवर्षांतं पट्त्रिंशद्वारकं प्रिये ॥
कंपते च पलैकेन जीवितज्ञा प्रियं वदे ॥८६॥

टीका—तीन वर्ष की अवस्था पीछे सात वर्ष की आयु पर्यंत नाड़ी एकपल में छत्तीस ३६ वार फरकती है ॥ ८६ ॥

ससमान्मनुवर्षांतं वेदाग्निवारकंधरा ॥
ततश्च त्रिंशद्वर्षांतं द्वात्रिंशद्वारमेवहि ॥८७॥

टीका—सात वर्ष पीछे चौदह वर्ष तक नाड़ी एक पलमें चौतीस ३४ बार चलती है और चौदह वर्ष पीछे तीस वर्ष तक एक पल में बत्तीस ३२ बार चलती है ॥ ८७ ॥

त्रिंशदब्दात्समारभ्य खशराब्दांतमेव च ॥
खाग्निवारान्विशालाक्षि जीवितज्ञा प्रकंपते ॥८८॥

टीक—तीस वर्ष से पचास वर्ष तक नाड़ी एक पल में तीस ३० बार चलती है ॥ ८८ ॥

शतार्धवर्षादारभ्याशीतिवर्षांतमेवहि ॥
चतुर्विंशतिवारान्वै कंपते धमनिः प्रिये ॥८९॥

टीका—पचास वर्ष के पीछे अस्सी वर्षतक चौबीस २४ बार नाड़ी एक पलमें चलती है ॥८९॥

एवमुक्तप्रमाणाच्च भवेन्न्यूनाधिकं यदि ॥
न्यूनाधिके क्रमत्स्यातां शीतोष्णे च घटस्तनि ।९०।

टीका—ऐसे उक्त प्रमाण से जो न्यून चलै तो शीतत्व और जो ज्यादा चलै तो उष्णता है ॥९०॥

अथ नाडीगतिकारणम् ॥

हृदयं चेतना स्थानं तज्ज्ञातृसुखदुःखयो ॥
तत्संकोचविकाशाभ्यांजीवितज्ञा प्रकंपते ॥६१॥

टीका—अथ नाड़ी की गतिका कारण कहते हैं चेतना का स्थान हृदय है सो सुख दुःख का ज्ञाता है; तिसके संकोच और विकाश से नाड़ी चलती है ॥ ६१ ॥

वायुरंतर्बहिर्याति तत्संकोचविकाशतः ॥
तेन नाड्यां वहत्यसृक्तेन तस्या गतिर्भवेत् ॥६२॥

टीका—उसी संकोच विकाश से वायु अन्दर और बाहर चलता है, उस चलने से नाड़ी में रक्त बहता है, उसी प्रवाह करके नाड़ी की गति जानी जाती है ॥ ६२ ॥

अथ नाडीज्ञाने प्रयत्नोऽवश्यमेव कर्तव्यः ॥ स यथा ॥ नाडीज्ञानं विना कश्चिद्वैद्यः सद्भिर्न पूज्यते ॥ ततश्चातिप्रयत्नेन तज्ज्ञानं गुरुतो लभेत् ॥ ६३ ॥

टीका—अथ नाड़ी ज्ञान में प्रयत्न तो अवश्य करना सो कहते हैं नाड़ी ज्ञान बिना कोई भी वैद्य

श्रेष्ठ जनों में में पूज्य नहीं होता, इस वास्ते यत्न प्रयत्न करके नाड़ी ज्ञान गुरु से लेना ॥ ६३ ॥

क्वचिद् ग्रंथानुसंधानाद्देशकालविभागतः ॥
क्वचित्प्रकरणाच्चापि नाड़ीज्ञानं भवेदपि ॥६४॥

टीका—कहीं ग्रंथ के अनुसंधान से, कहीं देश काल के विभाग से, कहीं प्रकरण से नाड़ीज्ञान होता है ॥ ६४ ॥

यथा वीणागता तंत्री सर्वान्रागान्प्रभाषते ॥
तथा हस्तगता नाड़ी सर्वान्रोगान्प्रकाशते ॥६५॥

टीका—जैसे वीणा में तांत सब रोगों को भाषण करती है। तैसे हाथ में नाड़ी सर्व रोगों का प्रकाश करती है ॥ ६५ ॥

सद्गुरूपदेशाच्च देवतानां प्रसादतः ॥
नाड़ीपरिचयः सम्यक् प्रायः पुण्येन जायते ॥६६॥

टीका—सद्गुरु के उपदेश से और देवता की प्रसन्नता से और बहुधा पुण्य से नाड़ी का पहि-चानना आता है ॥ ६६ ॥

अथ ग्रन्थकर्तुः पूर्वपरा ॥ बालाशर्माऽभवाद्विप्रः सुकुलः कुलवर्धनः ॥ कान्यकुब्जौ हि तद्वं-

शेऽभवद्गोवर्धनोऽभिपक् ॥ ९७ ॥ तापीरामः सुतस्तस्य तस्यासंस्तनुजास्त्रयः ॥ सीतारामश्च दत्तश्च मोतीराम इति प्रिये ॥ ९८ ॥ सीताराम प्रिया लक्ष्मीस्तत्साकं या दिवंगता ॥ दग्ध्वाग्नौ प्राकृतं देहं तच्छरीरेण संयुतम् ॥ ९९ ॥ तस्या एव हि पुत्रोऽहं पतिदेववरेंऽगने ॥ निर्मितेयं मया बाले नाड़ीज्ञानतरंगिणी ॥ १०० ॥

टीका-अथ ग्रंथकर्ता की परंपरा-अगाड़ी एक बालाशर्मा कान्यकुब्ज ब्राह्मण सुकुल होते भए, सो आपके कुल के बढ़ानेवाले होते भए, उनके वंशमें गोवर्धन सुकुल भए ॥ ९७ ॥ उनके तापीराम भए, उनके तीन पुत्र भए; सीताराम, दत्तप्रसाद, मोती-राम ॥ ९८ ॥ उनमें सीताराम की स्त्री लक्ष्मी जो अपना प्राकृत देह अपने पति के देह के साथ जला-के उनके संग हो स्वर्ग को गई ॥ ९९ ॥ हे पति-व्रताओंमें श्रेष्ठ ! मैं उसी माता का पुत्र हूं यह नाड़ी ज्ञानतरंगिणी मैंने रची है ॥ १०० ॥

लोलाक्षी पंपय्यानाम गंधर्वो बिलग्रामेऽभव-त्किल ॥ तस्याहमौरसी कन्या दासी त्वच्चरणा-

ब्जयोः ॥ १०१ ॥ तव रूपगुणौदार्यं विश्रुतं गुण-
वारिधे ॥ जनैः ख्यातं तथा दृष्टं कृतकृत्यास्मि
सांप्रतम ॥ १०२ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजरघुनाथप्रसाद
विरचिता नाड़ीज्ञानतरंगिणी समाप्तिमगात् ।

टीका–हे गुणवारिधे, पंपय्या नाम गंधर्व बिलग्रा-
मनाम नगरमें होता भया. उसकी मैं कन्या हूं और
आपके चरणकमलकी दासी हूँ ॥ १०१ ॥ लोगों
करके विख्यात आप का रूप, गुण, उदारता, सुनके
आपके सन्निधि में आई सो जैसा सुना वैसा देखा,
अब मैं कृतकृत्य भई ॥ १०२ ॥

इति श्रीरमणविहारिविरचिता नाड़ीज्ञानतर-
गिणी टीका तरणीसज्ञिका समाप्ता ।

अथ

अनुपानतरंगिणीप्रारंभः ।

नमो गजास्येश्वर देवदेव त्वत्तोऽस्यजन्मादय एव तुभ्यम् ॥ भवंति तस्मात्रतईशरक्ष धन्वंतरिर्यः कृपयाऽभवस्त्वम् ॥ १ ॥

टीका–अथ कवि प्रथम निर्विघ्नसमाप्तिके वास्ते इष्टदेवता को नमस्कारपूर्वक मंगलाचरण करते हैं नमो इत्यादि करके हे गजास्येश्वर देव देव, तुमको मेरा नमस्कार हो, तुमहीसे इस जगतके जन्म, रक्षा, प्रलय होते हैं और जो आप इस जगतपर कृपा करके धन्वंतरि होते भये इसवास्ते आप रक्षा करो ॥१॥

अथ कविप्रिया ॥ प्राणेश धातवः सप्त तथा सप्तोपधातवा ॥ शोधनं मारणं तेषामनुपानं गुणागुणम् ॥ २ ॥

टीका–कविप्रिया पूछती है कि, हे प्राणनाथ, सात धातु और सात उपधातु हैं, उनका शोधन, मारण, अनुपान, गुण और अवगुण कहो ॥ २ ॥

तथान्येषां रसानाँ वा ह्योपधीनाँ च मानद ॥
प्रीतये मम कंजाक्ष वदवैद्यशिरोमणे ॥ ३ ॥

टीका-वैसेही और रसोंका और औषधियोंका भी मेरी प्रीति के वास्ते कहो आप कमलनयन हैं और वैद्यों में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

कविः ॥ अयि नितंबिनि कंजविलोचने घन-
कुचे वनितामदमोचने ॥ शृणु वदामि हितां हि
नृणामहं गदवताअनुपानतरंगिणीम् ॥ ४ ॥

टीका-कवि उत्तर देता है कि हे नितंबिनि, हे कंजविलोचने, इत्यादि संबोधनयुक्त प्रिये, तुम सुनो मैं अनुपानतरंगिणी कहता हूं कैसी यह अनुपानतरंगिणी कि रोगी मनुष्यों को हितकारक ॥ ४ ॥

अथ सप्त धातवः ॥ स्वर्णं तारं प्रिये ताम्रं नागं
वंगं मनोहरे ॥ स्वर्णांगि जसदं लोहं सप्तैते
धातवः स्मृताः ॥ ५ ॥

टीका-अब सप्त धातु गिनाते हैं हे प्रिये सोना १, रूपा २, तांबा ३, सीसा ४, रांगा ५, जिसे कलई भी कहते हैं, जसद ६, लोह ये ७ धातु हैं ॥ ५ ॥

जसदादित्यजं विद्धि पित्तलं प्रियवल्लभे ॥
रविरंगभवं कांस्यं कश्यपान्वयरत्नजे ॥ ६ ॥

टीका—हे प्रियवल्लभे, जसद और ताम्र से पीतल होता है, और हे कश्यपान्वनरत्नगे, ताम्र रांगे से कांसा होता है ॥ ६ ॥

अथ शुद्धिं प्रवक्ष्यामि धातुदोषापमुक्तये ॥
तैलै तक्रे च गोमूत्रे कांजिके च कुलत्थजे ॥ ७ ॥
सूक्ष्मपत्राणि संताप्य नागवंगे सुगालिते ॥
जसदं गलितं चैव सप्तवारं विनिक्षिपेत् ॥ ८ ॥
शुद्धिमायांति संशुद्धकुलोद्भूतवरांगने ॥
नागवंगे तु वार्कस्य दुग्धे वारत्रयं क्षिपेत् ॥ ९ ॥
द्रवीभूते विशुद्धे ते अमीषां मारणं शृणु ॥
मृता हेमादिकः सर्वे धातवो गदघातकाः ॥ १० ॥

टीका—अथ धातुओं के दोष दूर करने के वास्ते शुद्धि कहते हैं, तैल में १, तक्र में २, तक्रको मठा और छाँछ भी कहते हैं, गोमूत्र में ३, कुलथी के काढ़े में ४, ओर काँजी में काँजो की विधि-भात का माँड अथवा कुलथी के जूसमें सोंठ, राई, जीरा,

हींग, लवण ये माफकसा मिला के तीन वा चार दिन रख छोड़े, जब खट्टा हो तब काम में लेवै, इन पाँचों में तपा २ सात सात बखत बुझावे तौ शुद्ध हो, तहाँ सोना १, चाँदी २, ताँबा ३, लोह ४, पीतल ५, ५ कांसा ६, इनके बारीक पत्र करके तप्त कर करके बुझावै, और राँगा सीसे को आक के दूध में तीन बखत बुझा लेने से शुद्ध होते हैं, अब इनका मारण कहते हैं क्योंकि, मरेहुए धातु रोग के मारने वाले होते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्रादौ स्वर्णविधिः ॥ तत्रापि शुद्धस्वर्ण-परीक्षा ॥ वह्नितप्तं हि यच्छीते रक्तत्वं-भजते च तत् ॥ शुद्धं श्वेतत्वमपि यद्भजतेऽशुद्धमीरितम् ॥ ११ ॥

टीका—तहाँ प्रथम धातुओं में सोने का मारना कहते हैं तहाँ भी प्रथम परीक्षा कहके हैं। जो सोना अग्नि में तपा के ठण्डा किये पीछे लालरंग रहै सो श्रेष्ठ और जो श्वेत होता है सो अशुद्ध है ॥ ११ ॥

अथ मारणम् ॥ शुद्धसूतसमं खल्वे स्वर्णं गोलं विधाय च ॥ द्वयोस्तुल्यं बलिं शुद्धं

दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव हि ॥ १२ ॥ शरावसंपुटे दत्त्वा पुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ चतुर्दशपुटैरेवं निरुत्थं भस्म जायते ॥ १३ ॥

शुद्ध—पारा और सोने का चूरन खरल करके गोला बनावै फिर दोनों की तुल्य शुद्ध गन्धक नीचे ऊपर रखके शराव संपुट में तीस जंगली कडों की आँच दे ऐसे चौदह पुटमें निरुत्थ भस्म होता है. निरुत्थ उसको कहते हैं कि, जो मधुघृत टंकणायुक्त आँच देने से न जीवे ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथान्यप्रकारः ॥ गालिते हाटके नागं षोडशांशं विनिक्षिपेत् ॥ शीते तस्मिन्मुसं-मर्द्य निंबुनीरेण गोलकम् ॥ १४ ॥ तत्समं गंधकं शुद्धं प्रिये दद्यादुपर्यधः ॥ शरावसंपुटे दत्त्वा पुटं त्रिंशद्वनोपलैः ॥ १५ ॥ एवं सप्त-पुटैर्भस्म निरुत्थं स्वर्णजं भवेत् ॥ नवयौ-वनसौंदर्यशालिनि स्वर्णभूषणे ॥ १६ ॥

टीका—अथ दूसरी विधि, सोने को अग्नि में गलावै जब गल जाय तब सोलह तोले सोने में एक तोला सीसा मिला दे, फिर ठण्डा करके निंबू

के रस में घोट के गोला बनावै फिर शराव संपुट में उस गोले की बराबर शुद्ध गन्धक नीचे ऊपर रखके तीस जंगली कण्डों की पुट दे ऐसे सात पुट में निरुत्थ भस्म होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथान्यः ॥ सौवीरमंजनं पिष्ट्वा मार्कवस्वरसैर्दिहेत् ॥ जातरूपस्य पत्राणि शरावे संपुटे पुटेत् ॥ १७ ॥ गजाख्येन पुटेनैकेनाँगने गजगामिनि ॥ हेम भूतिर्भवेच्छुद्धा रत्नभूषणभूषिते ॥ १८ ॥

टीका—अब तृतीय विधि लिखते हैं, काले सुरमा की डली, जल, भांगरे के रस में घोट के सोने के पत्रों में लेप लगावै और शराव संपुट में पुट दे तो एकही गजपुट में शुद्ध भस्म होगा ॥१८॥

अथ हेमभस्मसामान्यगुणाः ॥ तपनीयं मृतं काँतिं कंदर्पं तनुते तथा ॥ वातं पित्तं प्रमेहं च कासं श्वासं क्षतं क्षयम् ॥ १९ ॥ ग्रहणीमतिसारं च ज्वरं कुष्ठं विषं हरेत् ॥ वयसः स्थापनं स्वर्यं बल्यं वृष्यं रुचिप्रदम् ॥ २० ॥

टीका—अथ सोने की भस्म के सामान्य गुण कहते हैं. मरा सोना कांति और कामदेव की वृद्धि करता है और वात, पित्त, कफ, प्रमेह, श्वास, घाव, क्षयरोग, संग्रहणी, अतीसार, ज्वर, कुष्ट, विष इन रोगों का नाश करता है और अवस्था का स्थापन करने वाला है, स्वर सुन्दर करता है, बल बढ़ाता है, स्त्री गमन की इच्छा ज्यादा बढ़ाता है और अन्न पर रुचि बढ़ाने वाला है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथापक्वदोषाः ॥ स्वर्णमपक्वं हरते बलं च वीर्यं करोति रोगचयम् ॥ सुखस्य नाशं मरणं तस्मा-च्छुद्धं च सेवेत ॥ २१ ॥

टीका—अथ अध पक्के सोने के अवगुण कहते हैं. अधपक्का सोना बल और वीर्य को नाश करता है. और सुखका भी नाश और मरण भी करता है. इस वास्ते शुद्ध भस्म को सेवन करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ तद्दोषशांतिः ॥ अभया सितया भुक्ता त्रिदिनं नृभिरंगने ॥ हेमदोषहरी ख्याता सत्यं प्राण-कुमारिके ॥ २२ ॥

टीका—अब अपक्व दोष शांति कहते हैं, हरड़ और शक्कर तीन दिन खाने से स्वर्ण विकार जाता है. हे प्राणकुमारि ! यह सत्य है ॥ २२ ॥

अथानुपानम् ॥ वाजीकरं भृंगरसेन तूर्णंदुग्धेन शक्तिं प्रददाति नित्यम् ॥ पुनर्नवायुग् नयनामयघ्नं जराहरं चाज्ययुतं नराणाम् ॥ २३ ॥

टीका—अब अनुपान कहते हैं. सोने की भस्म भांगरे के रस में लेने से वाजी करण है. वाजीकरण उसको कहते हैं, जिसके लेने से घोड़ा सरीखा स्त्री के संग रमण करै. दूध के संग ले तौ शक्ति बढ़ावै पुनर्नवासंग नेत्ररोग हरता है, घृतसंग वृद्धपने को मिटाके ज्वान करता है ॥ २३ ॥

बुद्धिदं तु वचायुक्तं दाहघ्नं कटुकायुतम् ॥ कांतिदं कुंकुमेनेदं कांतिजिन्नवनीरजे॥ २४ ॥

टीका—वच के साथ बुद्धि देता हैं. कुटकी के साथ दाहशान्ति करता है. कुटकी को कडूभी कहते हैं केसर संग कांति बढ़ाता है ॥ २४ ॥

सद्योदुग्धयुतं हंति यक्ष्माणमतिदारुणम् ॥ लवंगशुंठीमरिचैरुन्मादं च त्रिदोषकम् ॥ २५ ॥

टीका—तुरन्त दुहे दूधके साथ क्षयरोग दूर करता है. लवंग, सोंठ, कालमीरच के साथ उन्माद रोग हरता है और त्रिदोष को भी हरता है ॥२५॥

मध्वामलकसंयुक्तं ग्रहणीं प्रबलां हरेत् ॥ मधुना वरखं हैमं विषदोषनिवारणम् ॥ २६ ॥

टीका—मधु और आमला के साथ संग्रहणी को सोने के वरख और मधुयुक्त विषको हरता है ॥ २६ ॥

शंखपुष्पीरसैरायुःप्रदं चन्दनचर्चिते ॥ विदारी-कंद संयुक्तं तुत्रदं पुत्रवत्सले ॥ २७ ॥

टीका—संखाहूली के रस संग आयुष्य बढ़ाता है. विदारी कंद के संग पुत्र देने वाला है ॥ २७ ॥
इति स्वर्णानुपानानि.

अथ रौप्यविधिः ॥ तत्र परीक्षा ॥ शृणुहि रूप-मति प्रमदोत्तमे वद भिषग्वर रूपगुणाकर ॥ त्रिविधमाहुरये रजतं प्रये खनिजवेधजवंगज-मायंकाः ॥ २८ ॥

टीका—अथ–रौप्यविधि तहाँ प्रथम परीक्षा रूपा तीन प्रकार का है एक खानि से पैदा, दूसरा वेध से, तीसरा वंग से पैदा होता है ॥ २८ ॥

उत्तमं वंगजं वेधजं कीर्तितं यन्मृदुत्वं हि शौक्ल्यं भजेदंगने ॥ शुभ्रवर्णं मृदुत्वेन हीनं यतोऽग्राह्य-मित्याहुरार्याः खनिस्थं ततः ॥ २९ ॥

टीका—तिन में वेध से और वंग से भी उत्पन्न रौप्य जो कोमल और श्वेतवर्ण है सो श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

अथ मारणम् ॥ तारपत्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा संशोध्य पूर्ववत्॥ तत्समौ सूतगंधौ च कांजिकेन विलेपयेत् ॥ ३० ॥

टीका—अथ मारणविधि, चांदी के कंठकवेधी सूक्ष्म पत्र करके पूर्ववत् शोधन करै, उन पत्रों के समान पारा, गंधक को कांजी में घोट के लेप करै ॥ ३० ॥

स्थाल्यां पचेद्दिनं रुद्ध्वा भस्म स्यात्तीक्ष्णवह्निना॥ वालकैणाक्षि विंबोष्ठि स्वर्णकुंभकुचे प्रिये॥ ३२ ॥

टीका—फिर उनको एक हांडी में मुद्रित करके एक दिन तीक्ष्ण अग्निकी आंच दे तो भस्म हो ॥३१॥

अथान्यः प्रकारः ॥ तारपत्रचतुर्थांशं शुद्धतालं विमर्दयेत् ॥ जंबीरजैर्द्रवैस्तेन तत्पत्राणि विलेपयेत् ॥ ३२ ॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार रूपे के पत्र से चतुर्थ भाग शुद्ध हरिताल निंबूके रसमें घोट के लेपन करै ॥ ३२ ॥

संपुटे पाचयेद्बुद्ध्वा त्रिभिरेव पुटैर्भवेत् ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्भूतिः शीलरूपगुणान्विते ॥ ३३ ॥

टीका—फिर शरावसंपुट करके तीस जंगली कंडों की आंच दे. ऐसी तीन पुटों में भस्म होती है ॥ ३३ ॥

अथान्यः ॥ रजतेन समं सूतं पेषयित्वा प्रमेलयेत् ॥ तत्समं तालकं गंधं निंबुनो रैर्विमर्दयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—अथ तीसरा प्रकार, प्रथम रूपा और पारा दोनों सम भाग लेके खरल करै, फिर इन दोनों के बराबर हरताल और गंधक मिलाके निंबू के रस में घोटे ॥ ३४ ॥

संपुटे रोधयित्वा तु पाच्यं त्रिंशद्वनोपलैः ॥ एवं रामपुटैस्तारं निरुत्थं भसितं भवेत् ॥ ३५ ॥

टीका—फिर शराव संपुट में तीस कंडों की पुट दे ऐसे तीन पुटों में भस्म होता है ॥ ३५ ॥

अथान्यः ॥ शुकप्रिया पीतकपत्र कल्केचतुर्गुणे तारकमेव रुद्ध्वा ॥ शराव के संपुट के पुटेश्व त्रिभिः पुटैरेव वराहसंज्ञैः ॥ ३६ ॥

टीका—अथ चौथा प्रकार; दाड़िम और बबूर के पत्र तोले चारकी लुगदी में एक तोला रूपा रख के हाथ भर गहिरे चौड़े खाड़े में शराव संपुट से पुट दे तो तीन पुट से भस्म होता है ॥ ३६ ॥

अथ गुणाः ॥ तारं करोत्यामयसिंधुपारं पित्तापहं वातकफौ निहंति ॥ गुल्मं प्रमेहं श्वसनं च कासं प्लीहक्षयक्षीणयकृद्विपार्तिम् ॥ ३७ ॥

टीका—अथ सामान्य गुण, रौप्यभस्म रोग समुद्र के पार उतारता है, पित्त, कफ, वात, गुल्म, प्रमेह, श्वांस, कास, प्लीहा, क्षय, क्षीण, यकृत, विष इन रोगों का नाश करता है ॥ ३७ ॥

वलीपलितनाशनं क्षुधाकांतिपुष्टिदम् ॥
पांडुशोफहं ददाति चायुषं नृणामिदम् ॥ ३८ ॥

टीक—और वलीपलित नाशक भी है, क्षुधा और तेज को बढ़ाता है। पाँडु और शोथको नाश करता है. आयुष्य दायक है ॥ ३८ ॥

अथापक्कदोषाः ॥ देहे हि तापं प्रकरो-
त्यक्वं तारं विबंधं किल शुक्रनाशम् ॥
अपाटवं चैव बलप्रहानिं महागदान्पालय-
तीति सत्यम् ॥ ३९ ॥

टीका—अथ आपक्वदोष, आपक्व रौप्य भस्म देह में ताप, विबंध और धातुका नाश, चातुर्य और बलकी हानि करता है और बड़े रोगों की रक्षा करता है ॥ ३९ ॥

अथ तच्छांतिः शर्करां मधुसंयुक्तां सेवयेद्यो
दिनत्रयम् ॥ अपक्करौप्यदोषेण विमुक्तः
सुखमश्नुते ॥ ४० ॥ ॥

टीका—रौप्यदोषशांति, मिश्री और मधु तीन दिन खाने से अपक्व रौप्यविकार मिटता है और सुख होता है ॥ ४० ॥

अथानुपानम्॥ दाहे शर्करया युक्तं वाते पित्ते वरायुतम्॥ त्रिसुगन्धयुतं मेहे गुल्मे क्षारसमन्वितम्॥ ४१॥

टीका—अनुपान-दाहमें शक्करयुक्त, वात और पित्त में त्रिफलायुक्त, प्रमेह में तज, पत्रज, इलायची के चूर्ण युक्त, गुल्म में क्षारयुक्त देना॥ ४१॥

कासे कफेऽटरूषस्य रसे त्रिकटुकान्विते॥ भार्ङ्गीविश्वयुतं श्वासे क्षयजित्सशिलाजतु॥४२॥

टीका—कास और कफ में त्रिकटु चूर्ण और अरूसे के रस युक्त, श्वांस में भारंगी सोंटयुक्त, और क्षय में शिलाजित युक्त देना॥ ४२॥

क्षीणे मांसर से देयं दुग्धे वा ललनोत्तमे॥ यकृत्प्लीहहरं कांते वरापिप्पलिसंयुतम्॥ ४३॥

टीका—क्षीणता में मांस का जूस अथवा दुग्ध-संयुक्त, यकृत् प्लीहा में त्रिफला और पीपरी के साथ देना॥ ४३॥

पुनर्नवायुतं शोफे पांडौ मंडूर संयुतम्॥ वलीपलितहं कांतिक्षुत्करं घृतसंयुतम्॥ ४४॥

टीका—शोथ में पुनर्नवाके साथ, पाँडु में मंडूर युक्त, वलीपलित में घृत युक्त, क्षुधा और कांति को भी बढ़ाना है ॥ ४४ ॥ इति रौप्यविधिः ॥

अथ ताम्रविधिः ॥ तत्र मारणयोग्यं ताम्रम् ॥
द्विविधं ताम्रम् वैद्यैर्गदितं म्लेच्छं तथैव नैपालम् ॥ क्षालनतो यच्छ्यामंतन्म्लेच्छं रक्तमेव नैपालम् ॥ ४५ ॥

टीका—अथ रौप्यविधि कथनानंतर ताम्रविधि कहते हैं. ताम्र को वैद्यों ने दो प्रकार का कहा है एक म्लेच्छ, दूसरा नैपाल. जो मंजन करने से श्यामता पकड़ता है सो म्लेच्छ, और जो रक्तवर्ण रहता है सो नैपाल ॥ ४५ ॥

त्याज्यं बाले म्लेच्छं ग्राह्यं नैपालकं हि शुद्धतरम् ॥ शृणु तद्दोषान् शुद्धे शोधनमपि सुप्रयत्नेन ॥ ४६ ॥

टीका—तिनमें शुद्ध नैपाल ग्रहण करना और म्लेच्छ को त्यागना. हे शुद्धे उस ताम्र के दोष और शुद्धि सुनो ॥ ४६ ॥

वांतिभ्रांतिर्विरेकत्वं क्लमस्तापस्तथैव च ।
वीर्यहंततृत्वं कंडुत्वे शूलं दोषाष्टकं रवौ ॥ ४७ ॥

टीका—वांति १, भ्रांति २, रेचनता ३, ग्लानि ४, ताप ५, वीर्यनाशकता ६, कंडू ७, शूल ८, ये आठ दोष ताम्र में सदा हैं. अब इन दोषों को मिटाने के वास्ते शोधन कहता हूँ ॥ ४७ ॥

वक्ष्यमाणेषु द्रव्येषु तप्तं तप्तं विनिक्षिपेत् ॥
सप्तकृत्वः सुशुद्धः स्याद्रविरेव न संशयः ॥४८॥

टीका—अगाड़ी के श्लोकों में लिखेंगे, वह द्रव्य जिनमें तपा तपा के बुझावैं, सात सात बेर तो शुद्ध हो ॥ ४८ ॥

तैलं तक्रं च गोमूत्रं वांतिं हन्याद्विचक्षणे ॥
कांजिकं च कुलत्थांभो भ्रांतिं हन्यात्सुदारुणाम् ।४६

टीका—तेल, मठा, गोमूत्र, वांति दोष दूर करता है. कांजी और कुलथी का काढ़ा भ्रांति दूर करता है ॥ ४६ ॥

वज्रदुग्धं च गोदुग्धं क्लमं हंति विशेषतः ॥
चिंचांभो निंबनीरं च तापं पापं यथा हरिः ॥५०।

टीका—सेहुँड थूहर का दूध और गोदुग्ध क्रम जो ग्लानि उसको मिटाता है, अमिली का पानी और नीबू का पानी तापको हरता है ॥ ५० ॥

शीर्षिणोऽभस्तथा कन्या रसः शूलं निवारयेत् ॥
कंडुतां गोघृतं दुग्धं हंति वृद्धा यथा बलम् ॥५१॥

टीका—नारियल का रस तथा घीकुमारी का स्वरस शूल निवारण करता है, कंडुता (खुजली) को गोघृतयुक्त दूध हरता है ॥ ५१ ॥

हन्याद्धै वीर्यहंतृत्वं द्राक्षा क्षौद्रं नितंबिनि ॥
रेचतां सौरणं नीरं हंति मस्तु तथैव हि ॥५२॥

टीका—वीर्य नाशकपना द्राक्षा और मधु दूर करता है रेचनता सूरण का पानी और दही का पानी हरता है ॥ ५२ ॥

अथ मारणम् ॥ रविपत्राणि तदर्धं सूतं खल्वे विमर्दयेद्गाढम् ॥ निंबुजनीरस्ताव-द्यावच्छुभ्राणि तानि स्युः ॥ ५३ ॥

टीका—अब मारण कहते हैं. ताम्रपत्र बहुत पतली सुई से छिदने माफिक करके पत्रों से आधे

पारे के साथ मर्दन करै, जहाँ तक सब पत्र श्वेत हों ॥ ५३ ॥

तद्द्विगुणं शुचि गंधं धान्याम्लेन विमर्द्य संलिपेत् ॥ पत्राणि हि दृढभांडे क्षिप्त्वा संपूरयेत्सिकतया भूत्या ॥ ५४ ॥

टीका—तिनसे दूना शुद्ध गंधक, धान्याम्ल में पीस के लेपन करै, धान्याम्ल उसको कहते हैं जो यवनिस्तूष करके चार पाँच दिन पानी में भिगोये राखै, जब खट्टा हो तब कार्य में ले फिर ताम्रपत्र, दृढ हाँडी में रखके क्रम से ऊपर बालू रेत, और राख भरै ॥ ५४ ॥

रुद्ध्वा शरावपुटके पश्चद्भांडे विनिक्षिपेच्चुल्ले ॥ मंदाग्निनाऽध्यामैर्म्रियतेशुल्वं नितंबविस्तारे ॥ ५५ ॥

टीका—सब पत्र पहिले दो सरावों में रखके हाँडी में धरे फिर रेती भस्म करके चूल्हे पर मंदाग्नि से चार पहर आँच दे तौ ताम्र मरै ॥ ५५ ॥

पश्चात्तदर्धगंधं तद्भस्मना विमर्दयेत्खल्वे ॥ सूरणतोयैर्देयं पुटं गजाख्यं ततश्च वै पाच्यम् ॥ ५६ ॥

टीका—फिर उस ताम्र भस्म से आधा गंधक मिला के स्वरण रस में खरल करके गजपुट दे ॥ ५६ ॥

चतुर्थांशेन गंधेन पंचव्यैः पृथक् पृथक् ॥
पंचकृत्वः पुटेत्ताम्रं मधुना सितया पुनः ॥ ५७ ॥

टीका—फिर भस्म से चौथा भाग गंधक मिला न्यारा न्यारा गोदुग्ध, घृत, दही, मठा, मूत्रमें खरल कर न्यारी न्यारी पुटैं दे, फिर मधु (सहत) के साथ उसी रीति से फिर शक्कर के साथ वैसे ही पुट दे ॥ ५७ ॥

सेवितं चेद्यदा वांतिं विधत्ते भावयेत्पुटेत् ॥
गोक्षीरेण ततः शुद्धं शिखिग्रीवनिभं भवेत् ॥५८॥

टीक—फिर जो खाने से वांति करावे तो गोदुग्धकी पुट देके आँच दे, जब शुद्ध मोरकी गरदन का रंग हो जाय तो श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥

अथान्यः ॥ ताम्रपत्रसमं सूतं गंधमम्लेन मर्दयेत् ॥ तेन संलिप्य पत्राणि शरावपुटके दहेत् ॥ ५९ ॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार ताम्रकी बराबर गंधक

पारा खटाई से मर्दन करके पत्रों को लेपन करके गजपुट दे ॥ ५९ ॥

गजाह्वैस्त्रिपुटैरेवं पंचता जायते ध्रुवम् ॥
चलत्कुंडलशोभाढ्ये पीनोत्तुंगपयोधरे ॥ ६० ॥

टीका—ऐसे तीन पुटों से भस्म होता है ॥ ६० ॥

अथान्यः ॥ तुर्यांशेन शिवेनैव ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ अम्लपिष्टबलिं दद्यादूर्ध्वाधो- द्विगुणं ततः ॥ ६१ ॥

टीका—अथ तीसरा प्रकार, ताम्र पत्र से चौथे भाग पारे से ताम्रपत्र लेपन करके उनसे दूना गंधक खटाई में पीस के नीचे ऊपर रखके ॥ ६१ ॥

चांगेरीकल्मगर्भे तद्यामं स्थाल्यां विपाचयेत् ॥
पंचत्वं जायते शुल्वं सर्वरोगहरं भवेत् ॥ ६२ ॥

टीका—लोनी की लुगदी में रखके हाँड़ी में एक पहरकी तेज आँच दे तो भस्म हो. इति ॥ ६२ ॥

अथ सामान्यभस्मगुणाः ॥ कासं श्वासं कफं वातं प्लीहानमुदरं कृमीन् ॥ कुष्ठम् शूलं ज्वरं तंद्रां वमिं शोफं च पांडुताम् ॥ ६३ ॥

टीका—अथ सामान्य भस्मगुण, कास, श्वास, कफ, प्लहा, वात, उदररोग, क्रमी, कुष्ठ, शूल, ज्वर, आलस्य, छर्दि, शोफ, पांडुरोग ॥ ६३ ॥

मोहमर्शोऽतिसारं च क्षयं गुल्मं शिरोव्यथाम् ॥
हिक्कां मेहं भ्रमं हंति रविर्वह्नि विसोधययेत् ॥६४॥

टीका—मूर्च्छा, अर्शरोग, अतिसार, क्षय, गुल्म, शिरकी दर्द, हिचकी, प्रमेह, भ्रम, इनने रोगों को हरता है और भूंख बढ़ाता है ६४ ॥

अथापक्वदोषाः ताम्रमपक्वं वमनं विरेकता-
पादिकं भ्रमं मूर्च्छाम् ॥ मेहं बलस्य नाशं
करोति शुक्रस्य चायुषश्चापि ॥ ६५ ॥

टीका—अथ अपक्वदोष, अपक्का ताम्र भस्म वमन, विरेचन, ताप, भ्रम, मूर्च्छा प्रमेह, बल का नाश, वीर्य और आयुष्यका भी नाश करता ॥ ६५ ॥

अथ दोषशांतिः ॥ मुनिव्रीहिसितापानं वा
धान्याकं सितांचकैः ॥ ताम्रदोष मशेषं वै
पिबहन्यादिनत्रयात् ॥६६॥ कैः जलैरित्यर्थः ॥

टीका—अथ ताम्र दोषशान्ति कहते हैं, तिन्नी

अथवा धना. शक्कर जल से तीन दिन पिये तो ताम्र दोष से छूटे ॥ ६६ ॥

अथानुपानम् ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ स्वबुद्ध्यापि प्रयुंजीत रोगनाशनवस्तुभाः ॥ ६७ ॥

टीका—अथ अनुपान, पीपरि सहत, संग सब रोगों में देवे अथवा अपनी बुद्धि माफिक रोग नाशक वस्तु के साथ दे तो रोग जावे ॥ ६७ ॥

अथ नागविधिः ॥ पूर्वं तच्छोधनम् ॥ कुमारीस्वरसेवापि वराकाथे सुगालयेत् ॥ तप्तं तप्तं सप्तकृत्वो नागः शुद्धतरो भमेत् ॥ ६८ ॥

टीका—अथ नागविध कहते हैं. तत्र प्रथम शोधन कहते हैं. घीकुमारिपाठा के रसमें वा त्रिफला के कषाय में सात वेर गला के बुझावे तो नाग शुद्ध हो ॥ ६८ ॥

तालकस्वरसे वारान् चत्वारिंशद्विगालयेत् ॥ तप्तं तप्तं विशुद्ध्येत नागो नागेंद्रगामिनि ॥ ६९ ॥

टीका—अथवा ताड़ी में चालीस वार बुझावे तो शुद्ध हो ॥ ६९ ॥

अथ मारणम् ॥ खर्परे निहितं नागं रविमूलेन घट्टयेत् ॥ यामत्रिकैर्भवेद्भस्म हरिद्वर्णमदूषणम् ॥ ७० ॥

टीका—अथ मारण, माटी के कूंड़े में सीसा रख के चूल्हे पर आंच दे और आकड़े की जड़ से चलाता जाय तो तीन पहर में हरा रंग भस्म होता है ॥ ७० ॥

अथान्यः ॥ मर्दितो वृषतोयेन नागः कुंभपुटैस्त्रिभिः ॥ सशिलो म्रियते सत्यं सर्वरोगहरो भवेत् ॥ ७१ ॥

टीका—प्रकार दूसरा-सीसा की बरोबर मैनशिल मिला के अरूसा के रसमें मर्द्दन कर एक घड़े में बहुत से छिद्र कर कोयला आधा घड़ा भर बीच में संपुट में सीसा रखके ऊपर फिर कोयला भरके अग्नि देवे, ऐसे तीनवार में भस्म होता है ॥ ७१ ॥

अन्योऽपि ॥ मूलताऽगस्तिपत्राणि पिष्ट्वा पात्रं ॥ विलेपयेत् ॥ वासापामार्गजं क्षारं तत्र नागे द्रुते क्षिपेत् ॥ ७२ ॥
गुरुक्तितश्चतुर्थांशं वासादर्व्या विघट्टयेत् ॥
यामैकेन भवेद्भस्म ततो वासारसान्वितम् ॥
मर्दयेत्संपुटेत्स्याद्धै नागसिंदूरकं शुभम् ॥७३॥

टीका—तीसरा प्रकार कचुवा और अगस्तवृक्ष के पत्र पीस के पात्र में लेपन कर ऊपर सीसा धर चूल्हे पर चढ़ावै, जब सीसा गलै तब अरूसा और अपामार्ग का क्षार सीसा से चौथा भाग डालता जाय और अरूसा की मोटी लकड़ी से चलाता जाय तो एक पहर में भस्म हो फिर अरूसा के रसमें खरल कर गजपुट दे तो लाल भस्म हो जाय ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथान्यः ॥ शुद्धं नागं समादाय द्विगुणा- च मनःशिला । पलाशदारुणा सम्यग्घर्षयेत् खर्परे शुभे ॥ ७४ ॥

टीका—चौथा प्रकार. शुद्ध सीसा से दूना मैन-

सीस खपर में चढ़ा, पलास की लकड़ी से चलावै और तीव्र आँच दे तो भस्म हो ॥ ७४ ॥

तीक्ष्णाग्नि मृतं नागं तुर्यांशां च मनः शिलाम् ॥ तांबूलस्वरसैर्मर्द्य शरावे पुटके पुटेत् ॥ द्वात्रिंशतिपुटैरेवं नागभूतिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

टीका—फिर चौथे भाग की मैनशिल मिला के नागवेली के पान के रस में घोट के पुट दे ऐसे ३२ बत्तीस पुट में भस्म होता है ॥ ७५ ॥

भागेकमहिफेनस्य नागभाग चतुष्टयम् ॥ घर्षणान्निंबकाष्ठेन मंदवह्निप्रदानतः ॥ नाग- भूतिर्भवेच्छ्वेतावीर्यदार्ढ्यकरी मता ॥ ७६ ॥

टीका—पाँचवाँ प्रकार-सीसा से चौथा भाग अफ़ीम खपरे में दोनों को आँच दे और नींबू की लकड़ी से चलाता जाय तौ श्वेतभस्म हो, खाने से वीर्य दृढ़ करै ॥ ७६ ॥

अथ नागेश्वरविधिः ॥ पलद्वयं मृतं नागं हिंगुलं च पलद्वयम् ॥ शिला कर्षमिता

ग्राह्य सर्वतुल्यंहि गंधकम् ॥ ७७ ॥
निंबुनीरेण संमर्द्य ततो गजपुटे पुटेत् ॥
तदा नागेश्वरोऽयं स्यान्नगराजसुतोपमे ॥७८॥

टीका—अथ नागेश्वरविधि-सोसा भस्म तोला आठ, हिंगुल तोला आठ, मैनसिल तोला एक, गंधक तोला सत्रह, नीबू के रस में खरल कर गजपुट दे तो नागेश्वर होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ वातरोगं क्षयं गुल्मं पांडुशूलभ्रमान् कफम् ॥ वह्निमांद्यं शुक्र-दोषं कासार्शोग्रहणी कृमीन् ॥ ७९ ॥ अप मृत्युं निहत्याशु शतनागसमं बलम् ॥ ददाति चायुषो वृद्धिं चेत्कृतं विधिना प्रिये ॥ ८० ॥

टीका—अथ साधारणगुण-वात, क्षय, गुल्म, पांडु, शूल, भ्रम, कफ, अग्नि मंद, धातु विकार, कास, अर्श संग्रहणी, कृमि, अकाल मृत्यु इतने रोगों को हरै और शत हस्तिबल आनन्द दे, आयुष्य बढ़ावे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथापक्वदोषाः ॥ रक्तदोषं कफं पांडुं कुष्ठ गुल्मारुचिक्षयान् ॥ ज्वराश्मर्यौकरोत्येव कृच्छ्रशूलभगंदरान् ॥ ८१ ॥

टीका—अथ अपक्वदोष-रक्तदोष, कफ, पांडु, कुष्ठ, गुल्म, अरुचि, क्षय, ज्वर, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भगंदर, इन रोगों को उत्पन्न करै ॥ ८१ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ हेमां हरीतकीं सेवेत्सिता-युक्तां दिनत्रयम् ॥ अपक्वनागदोषेण विमुक्तः सुखमश्नुते ॥ ८२ ॥

टीक—अथ नाग दोषशांति-चौक और हरड़ शक्कर से तीन दिन सेवन करै तो अपक्व नागदोष से छूटै ॥ ८२ ॥

अथानुपानम् ॥ मृतं नागं सिता सार्धं मायुं वायुं शिरोव्यथाम् ॥ नेत्ररोगं शुक्रदोषं प्रलापं दाहकं जायेत् ॥ ८३ ॥ प्रददाति रुचिं कामं वर्धयेत्पथ्यसेविनः ॥ स्वबुध्या चान्यरोगेषु प्रदद्याद्रोगगशांतिकृत् ॥ ८४ ॥

टीका—अथ अनुपान-सीसा भस्म, मिश्री,

(खड़ी साकर) से ले तो पित्त, वात, मस्तक रोग, नेत्ररोग, वीर्यदोष, प्रलाप, दाह इनको दूर करे. अन्न रुचि उपजावै, काम वृद्धि करे. और रोगों में अपनी बुद्धि से देवे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ नागेश्वरानुपानम् ॥ निशांते नागराजं यः सेवयेल्ललने पुमान् ॥ नागवल्लीदलेनाहं यथा नीरुक् प्रकामवान् ॥ ८५ ॥ भवेन्नारी-शतं भुक्त्वा तथाप्यंबुजलोचने ॥ तृप्ति न याति कामस्य नित्यवृद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८६ ॥

टीका—अथ नागेश्वर अनुपान–जो मनुष्य रात्रि के अन्त दो घड़ी रात रहे तब नागवल्ली पत्र के साथ नागेश्वर सेवे तिसके रोगमात्र न रहै और कामकी वृद्धि हो सो मनुष्य सौ १०० स्त्रियों से भी तृप्त न हो. इति नागविधिः ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अथ वंगविधिः ॥ तत्र वंगपरीक्षा ॥ शुभ्रं सुकठिनं वंगं ग्राह्यं वैद्यवरैः सदा ॥ अन्यथा-तविमिश्रं चेत्त्याज्यमेवमनर्थकम् ॥ ८७ ॥

टीका—अथ नागविधि कथनानंतर वंगकी विधि कहते हैं. प्रथम तत्र वंग परीक्षा श्वेत और कठिन

देखके ले. अन्य में और धातु मिली है सो त्याज्य है ॥ ८७ ॥

अथ मारणम्॥ वंगतुल्यं वराचूर्णं निंबकाष्ठेन घर्पयेत् ॥ खर्परे भस्मतां यातं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ ८८ ॥

टीका—अथ मारणम्-रांगे की बराबर त्रिफला-चूर्ण खपरे में चढ़ा निंबके सोंटे से घोटे, जब भस्म हो तब सर्व कार्य में युक्त करै ॥ ८८ ॥

अथान्यः ॥ वंगपादांशतो ग्राह्यमपामार्गभवं रजः ॥ स्थूलाग्रया लोहदर्व्या खर्परे तं विघट्टयेत् ॥ ८९ ॥ शनैर्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यं पुनः शनैः॥ एकत्र च ततः कृत्वा यावदंगारवर्णताम् ॥ ९० ॥ भजेत्पश्चाच्छ-रावेण नूतनेन विरोधयेत् ॥ ततस्तीव्राग्नि-संपक्वं वंगं भूतित्वमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥

टीक—दूसरी विधि. वंग का चौथा भाग अपा-मार्ग जिसको लटजीरा और चिरचिरा और अद्धा झारो और अघेड़ा भी कहते हैं, सो खपरे में अग्नि

पर चढ़ा के बड़ी लोहे को कलछी से घोटना जाय. धीरे धीरे घोटने से जबतक भस्म न हो तब तक घोटना फिर एक जगह करके खूब आंच दे. जब लाल अग्नि सरीखा हो तब शीतल कर शराव संपुट में गजपुट दे तो श्वेतभस्म हो ॥८९॥९०।९१॥

अथ वंगेश्वरविधिः ॥ भागचतुष्कं वंगं मृतं हि शंखं रसं विभागैकम् ॥ पृथग्द्विकं हरितालं कांजिकपिष्टं शराव संपुटके ॥९२॥ पुटेद्गजाख्ये यंत्रे घनकुचयुग्मे निशेशमुखि बाले ॥ वंगेश्वरोऽयमबले बलदोनृणांहि रसिकानाम् ॥ ९३ ॥

अथ –अथ वंगश्वरविधिः । वंगभस्म चार तोला, शंख भस्म एक तोला. पारा भस्म एक तोला, हरिताल दो तोला, कांजी में पीस के शराव संपुट में गजपुट दे तो वंगेश्वर हो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ श्वसनमेहसमीरण नाशनः प्रदरशूलयकृत्कफपांडुहृत् ॥ भ्रम-

वमित्क्षयचिद्बलवीर्यकृत् सकलरोगहरः शुचिवंगकः ॥ ६४ ॥

टीका--अथ साधारणगुण-श्वास, प्रमेह, प्रदर, शूल, यकृत, कफ, पांडु, भ्रम, उलटी, क्षय, सर्व रोगनाशक और बल वीर्य का बढ़ाने वाला है ॥ ६४ ॥

अथ वंगेश्वरगुणाः ॥ भ्रमतिमिरकफप्रमेहकासान् श्वसनपवनापित्तरक्तदोषान् ॥ ग्रहणिगदसशूलकुष्ठपांडुज्वरगदमपि हंति वंगराजः ॥ ६५ ॥

टीका—अथ वंगेश्वर के गुण, भ्रम, तिमिर, कफ, प्रमेह, कास, श्वास, वात, पित्त, रक्तदोष, संग्रहणी शूल, कुष्ठ, ज्वर इन रोगों को हरे ॥ ६५ ॥

अथापक्वदोषाः ॥ यद्यपक्वं भवेद्वंगं गुल्म कुष्ठप्रमेहकृत् ॥ वातशोणितमंदग्निपांडुदौर्बल्यरुक्प्रदम् ॥ ६६ ॥

टीका—अथ अपक्व दोष-अधपक्का वंग गुल्म, कुष्ठ, प्रमेह, वात, रक्त, मंदाग्नि, पांडु; निर्बलता इतने रोग करता है ॥ ६६ ॥

अथ तच्छांतिः ॥ मेषशृंगीं सितायुक्तां
सेवते यो दिनत्रयम् ॥ वंगदोषविमुक्तोऽसौ
सुखं जीवति मानवः ॥ ९७ ॥

टीका—अथ वंग दोषकी शांति-जो मनुष्य मेढासिंगी शक्करसंग तीन दिन सेवन करै तो वंग विकार शांति हो ॥ ९७ ॥

अथानुपानम् ॥ कर्पूरेण युतं वंगं हरत्या
स्यविगंधताम् ॥ पौष्टिके क्षीरसंयुक्तं जाती-
फलयुतं तु वा ॥ ९८ ॥

टीका—अथ अनुपान कपूरसाथ वंग सेवन करने से मुखदुर्गंधि हरता है, दूधसंग वा जायफल संग पुष्ट करता है ॥ ९८ ॥

प्रमेहे तुलसीपात्रैः खादेद्वंगं प्रसन्नधीः ॥
गुल्मे टंकणसंयुक्तं पांडुरोगे घृतेन च ॥ ९९ ॥

टीका—प्रमेह को तुलसी पत्र से, गुल्म में टंकण क्षार संग और पांडुरोग में घृतसंग ॥ ९९ ॥

ऊर्ध्वश्वासे रक्तपित्ते निशया भक्षयेत्सुधीः ॥
पित्ते शर्करया खादेन्मधुना बलवृद्धये ॥ १०० ॥

टीका—ऊर्ध्वश्वास और रक्त पित्त में हलदी संग, पित्त में शक्कर संग, बलवृद्धि के वास्ते मधुसंग ॥ १०० ॥

वीर्यस्तंभाय कस्तूर्या नागवल्लीदलेनवा ॥
मंदाग्नौ मगधाचूर्णं कस्तूरीसंयुतं भजेत् ॥१०१॥
कंकोलस्य रजोयुक्तं मंदाग्नौ वा भजेन्नरः ॥
खदिरक्वाथसंयुक्तं वर्त्मरोगे प्रशस्यते ॥ १०२ ॥

टीका—वीर्यस्तंभन के वास्ते कस्तूरी वा पान संग, मंदाग्नि में पिपरी और कस्तूरी संग, अथवा कंकोल के चूर्ण संग, नेत्र के पंकल रोग में खैर के काढे में ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

धात्रीफलयुक्तं वापि पूगचूर्णसमन्वितम् ॥
सेवितं हरतेऽजीर्णं रसोनेनास्थिगं ज्वरम् ॥१०३॥

टीका—अजीर्ण में आमला वा सुपारी संग, हड्डीगत ज्वर में लहसन संग सेवन करना ॥१०३॥

कुष्ठे सिंधुफलैः सार्धं निर्गुंडीस्वरसेन वा ॥
कौब्जेऽपामार्गमूलेन प्लीहिटंकणसंयुतम् ॥१०४॥

टीका—कुष्ठ रोग में समुद्र फल वा निर्गुंणी

के स्वरस में; कूबर रोग में अपामार्ग की जड़में और प्लीहा रोगमें टंकणक्षार संग देना ॥ १०४ ॥

दिव्यसमुद्रफलाभ्यां वंगं संमर्द्य नागवल्लिजलैः ॥
प्राणप्रिये विलिंपतिना यदि लिंगं भवेद्धि दीर्घतरम् ॥ १०५ ॥

टीका—लवंग और समुद्र फल साथ वंग नागबेलि के पत्ररस में मर्दन करके लिंगमें लेप करे तो लिग बड़ा हो ॥ १०५ ॥

लवंगरोचनायुक्तं तिलकं जनवश्यकृत् ॥
लवंगैरंडमूलाभ्यां लेपश्चार्द्धावभेदके ॥ १०६ ॥

टीका—लवंग और गोरोचन साथ तिलक करे तो जन वश्य हो, लवंग और एरंड मूलके साथ लेप करे तो अर्धावभेद अर्थात् आधा सीसी जावे ॥ १०६ ॥

यवातिकायुतं वाते वाजिगंधायुतं तुवा ॥
जलोदरेऽप्यजाक्षीरसंयुतं गुणकृद्भवेत् ॥१०७॥

टीका—वात रोग में अजमा वा असगंध, जलोदर में बकरी के दूधसंग देवे तो गुण करने वाला होता है ॥ १०७ ॥

पुत्राप्त्यै रासभीक्षीरैस्तक्राढ्यं वात गुल्मनुत् ॥ कर्कटीरचरसैः षंढो पुरुषत्वमवाप्नुयात् ॥ १०८ ॥

टीका—पुत्र प्राप्ति के वास्ते गधी के दूध में, वात गुल्म में मट्ठा संग और नपुंसक को काकड़ी के रसमें देवे तो पुरुषत्व प्राप्त होता है ॥ १०८ ॥

अपामार्गरसैर्वंगं शिरोरोगनिवारणम् ॥
शालूकमालतीपत्री लवंगैर्धातुदोनुपत् ॥१०९॥

टीका—मस्तक रोग में अपामार्ग के रसमें, धातु विकार में जावत्री जायफल लवगं संग देना ॥ १०९ ॥

जातीफलाश्वगंधाभ्यां कटिपीड़ानिवारणम् ॥
रसोनतैलयुग्मस्यमपस्मारनिषूदनम् ॥ ११० ॥

टीका—कटि पीडा में जायफल और असगंध संग, अपस्मार में लहसुन और तेल युक्तनास देना ॥ ११० ॥

जातीफललवंगाढ्यं मधुना कसनं जायेत् ॥
सुरसास्वरसैर्वंगं बलदं हि नृणामिदम् ॥ १११ ॥

टीका—कास में जायफल लवंग मधु संग अथवा तुलसी रससे सेवन किया मनुष्य को बल देता है ॥ १११ ॥

अथ जसदविधिः ॥ तच्छोधनं वंगवत् ॥
अथ मारणम् ॥ जसदस्य तु पत्राणि कृत्वा सूक्ष्मतराणि च ॥ तत्पादांशौ शिलागंधा-वर्कदुग्धविमर्दितौ ॥ ११२ ॥ लेपयेत्तेन पत्राणि शरावाभ्यां निरोधयेत् ॥ गजाह्व संपुटेदेवं द्वादशैर्म्रियते पुटैः ॥ ११३ ॥

टीका—अथ जसदविधिः—तत्र शोधनं वंगवत् अथ मारण.—जसद के सूक्ष्म पत्र करे. तिसका चौथा भाग मैनशील और गंधक आँकड़े के दूध में खरलकर पत्रों में लेप कर शराव संपुटमें गजपुट दे. ऐसे बारह पुटों करके शुद्ध भस्म होता है ॥११२॥११३॥

अथान्यः प्रकारः ॥ जसदस्य चतुर्थांशं पारदं गंधकं प्रिये ॥ मर्दयेत्खल्वके सम्य-कन्यानिंबुरसैः पृथक् ॥ ११४ ॥ लेपयेत्तेन

पत्राणि गजाह्वे पाचयेत्पुटे ॥ एवमेकपुटे नैव भस्मसाज्जसदं भवेत् ॥ ११५ ॥

टीका—अथ दूसरी विधि.—जसदपत्र के चौथा भाग पारा और गंधक घीकुमार पाठे के रसमें खरल कर फिर नींबू के रस में खरल कर पत्रों में लेप कर शराव संपुट में गजपुट दे तो एक पुट में भस्म हो ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मारयेद्वंगवद्वापि नागवद्वा विचक्षणे ॥ तेन भस्मत्वमायाति सर्वकार्यकरं भवेत् ॥ ११६ ॥

टीका—अथवा वंग वा सीसा की रीति से मारे तो भस्म होता है और कार्य करने वाला होता है ॥ ११६ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ त्रिदोषप्रमेहाग्निमांद्यादिरोगानतीसार पित्तज्वरा जीर्णकासान् ॥ विबंधामवातं हरेद्रीतिहेतुर्वमिं शूलशीतज्वरास्तस्य तीक्ष्ण ॥ ११७ ॥

टीका—अथ साधारणगुण. त्रिदोष प्रमेह, अग्नि मांद्य, नेत्र रोग, अतिसार, पित्तज्वर.

अजीर्ण, कास, विबंध, आमवात, वांति, शूल, शीतज्वर, रक्तातिसार इनको नाश करे ॥ ११७ ॥

अथापक्कदोषाः ॥ अपक्वं जसदं रोगान् प्रमेहाजीर्णमारुतान् ॥ वमिं भ्रमंकरोत्येनं शोधयेन्नागवत्ततः ॥ ११८ ॥

टीका—अथ अपक्व दोष.–अपक्क जसद, प्रमेह, अजीर्ण, वात वाँति, भ्रम इनको पैदा करता है इससे सीसा के माफिक शोधना चाहिये ॥ ११८ ॥

अथ शान्तिः ॥ बालाभयां सितायुक्तां सेवयेद्यो दिनत्रयम् ॥ जसदस्य विकारोऽस्य नाशमायाति सत्वरम् ॥ ११९ ॥

टीका—अथ शान्ति.--बाल हरड़ शक्कर संग तीन दिन सेवन करै तौ जसद विकार जाय ॥ ११९ ॥

अथानुपानम् जसदं भिषजां वसुदं ललने प्रवदाम्यनुपानमहं सुखदम् ॥ त्रिसुगंधयुतं भसितं ह्यशिनंत्रिमलोद्भवमाशु निहंति गदम् ॥ १२० ॥

टीका—अथ अनुपान-तज, तमालपत्र, इला-यची साथ जसद त्रिदोष का नाश करता है ॥ १२० ॥

अग्निमंथरसैर्हंति वह्निमांद्यं दुरासदम् ॥
नेत्ररोगं गवाज्येन जीर्णेनैवांजने कृते ॥१२१॥
अथवा लालया प्रातर्नेत्ररोगं हि व्युष्टया ॥
अहिवल्लिदलोत्पन्नवीटकेन प्रमेहनुत् ॥१२२॥

टीक—अग्निमांद्य में, अरनी के रसमें, नेत्र रोग में जीर्ण गोघृत से अंजन करै अथवा बासी थूक से अंजन करे, प्रमेह में पान के बीड़ा साथ खावे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

सतंडुलहिमैर्हंति खर्जूरैर्मायुजज्वरम् ॥
यवानिकालवंगाभ्यां युतं शीतज्वरं जयेत् ॥१२३॥

टीका—पित्त ज्वर में चावल का हिम और खजूर में, शीतज्वर में अजमायन, लवंग साथ सेवन करे तो रोग जाता है ॥ १२३ ॥

खर्जूरतंडुलहिमै रक्तातीसारनाशकृत् ॥
शर्कराजाजिसंयुक्तमती सारंवमिं क्षयेत् ॥१२४॥

टीका—खजूर और चावल के हिमसे रक्ताति-

सार जावे. अतिसार और वांति में जीरा शक्कर साथ देना ॥ १२४ ॥

यवानिकालवंगजीरकैः सशर्करैः शिवायु-
धाख्यमामयं निहन्ति वामलोचने प्रिये ॥
यवानिकाकवोष्णनीरसंयुतं विबंधनुत्तथाम-
वातनुद्यवानिकालवंगसंयुतम् ॥ १२५ ॥

टीका—शूल रोग में आजमायन, लवंग, जीरा, शक्कर संग, विबंध रोग में अजमायन और थोडा गरम जल संग, आमवात में अजमायन लवंग संग देना ॥ १२५ ॥

महिषीनवनीतेन प्रमेहं जयति ध्रुवम् ॥
वल्लं पथ्ये च गोधूमकर्पटी घृतसंयुता ॥ १२६ ॥

टीका—प्रमेह में भैंस के माखन संग तीन रात्रि सेवन करे. पथ्य में फकत गेहूँ भौंरिया जिसको अंगकडी और बाटी भी कहते हैं सो घृत युक्त खावे ॥ १२६ ॥

यवानिकालवंगाभ्यामजीर्णंकोष्णनीरयुक् ॥
मधुपिप्पलिसंयुक्तं कासं जयति सत्वरम् ॥१२७॥

टीका—अजीर्ण में अजमायन, लवंग और गरम जल संग, कास में मधु पिप्ली संग ले तो शीघ्र कास जावे ॥ १२७ ॥

अथ लोहविधिः ॥ तत्र लोह परीक्षा ॥
वामोरु त्रिविधं लोहं प्रवदंति भिषग्वराः ॥
कांतं तीक्ष्णं तथा मुण्डम् दिव्यमध्याधमं क्रमात् ॥ १२८ ॥

टीका—अथ लोहविधिः-तत्र परीक्षा-लोह तीन प्रकार का है. कांत, तीक्ष्ण. मुण्ड, क्रमसे दिव्य, मध्य, अधम है ॥ १२८ ॥

कांतं श्रेष्ठतमं ग्राह्यं कांताभावे तु तीक्ष्णकम् ॥
मुंडकं सर्वथा त्याज्यं यतो दोषा हि मुंडके ॥ १२९ ॥

टीका-सर्व में काँत श्रेष्ठ है । काँत न मिले तो तीक्ष्ण, और मुंडक दोष युक्त है इस वास्ते सर्वथा त्याग करना ॥ १२९ ॥

चतुर्धा कांतमप्याहू रोमकं भ्राजकं प्रिये ॥
चुंबकं द्रावकं तेषां गुणाज्ञेया यथोत्तरम् ॥ १३० ॥

टीका—काँत भी चार प्रकार का है. रोमक, भ्राजक, चुंबक, द्रावक यथोत्तर एक से एक श्रेष्ठ है ॥ १३० ॥

ताम्रवच्छोधयेल्लोहं विशेषात्त्रैफले जले ॥
त्रयोदशपलान्नोर्ध्वं तथा पंचपलादधः ॥ १३१ ॥

टीका—लोह की शुद्धि ताम्रवत् है. विशेष त्रिफला में सात बेर बुझाना तेरह पलसे ज्यादा न करना पाँच पलसे नीचा न करना ॥ १३१ ॥

अथ मारणम् ॥ मृदुमध्यखरैर्भेदैर्लोहपाक-
स्त्रिधा मतः ॥ शुष्कपंकसमौपूर्वौ सिकता-
सदृशः खरः ॥ १३२ ॥

टीका—अथ मारण. मृदु, मध्य और खर भेद करके लोहपाक तीन प्रकार का है. सूखा कीच सरीखा मृदु और मध्य है. बालू रेत सरीखा खर है ॥ १३२ ॥

गंधलिप्तमयः पत्रं वह्नौ तप्तं पुनः पुनः ॥
मीनाक्षिस्वर से क्षिप्त्वा यावत्तन्नो
विशीर्यते ॥ १३३ ॥ ततः पारदगंधेन

तुल्यांशं मर्दयेच्छि तत् ॥ मीनाक्षिचूप-
निर्गुण्डीरसैर्गजपुटान्मृतिः ॥ १३४ ॥

टीका—गंधक खटाई से लेपन करके अग्नि में नस करके मछली के रसमें बुझाता जावे, जहाँ तक पत्र फुटै नहीं. फिर पत्र के समभाग पारा गंधक मिला मछली और निर्गुंडी के रस में घोट गजपुट दे तौ लोह मरै ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ अयश्चूर्णं वराक्वाथे कृत्वा गोलं पुनः पुनः ॥ गर्ते निर्वातके देशेषोडशांगुलसंमिते ॥१३५॥ पुटं दत्त्वा प्रयत्नेन चतुः षष्टिपुटैरयः ॥ भस्मीभूतं विशालाक्षि पद्मरागनिभं भवेत् ॥ १३६ ॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार. शुद्ध लोहे का चूर्ण त्रिफला के काढे में घोट के संपुट में रख के, सोलह अंगुल गहरे खाढे में पुट दे ऐसे चौसठ पुट देवे तो पद्मराग तुल्य रंग लोह भस्म होता है ॥१३४॥१३५॥

अथान्यः ॥ भागैकं पारदं कांते द्विभागं गन्धकं शुचिम् ॥ तयोस्तुल्यमयश्चूर्णं

मर्दयेमत्कन्यकाद्रवैः ॥१३७॥ यामद्वयमितं
पश्चात्स्थापयेत्ताम्रभाजन ॥ व्याघ्रपत्रैः
समाच्छाद्य यदोष्णम् प्रहरद्वयात् ॥१३८॥
स्थापयेच्च ततः पश्चाद्धान्यराशौदित्रयम् ॥
ततः संमर्दयेद्गाढमेवं वारितरंभवेत् ॥१३९॥

टीका—अथ तीसरा प्रकार–एक भाग पारा, दो भाग गन्धक, तीन भाग लोहचूर्ण, घीकुमार पाठे के रस में खरल कर ताम्र के पात्र में रख के ऊपर से एरण्ड का पत्र ढक के तीव्र सूर्य के ताप में दो पहर रख दे जब उष्ण होवे तब अन्न की राशि में रख छोड़ै. दिन तीन पीछे निकासि खरल करै तो पानी पर तिरैगा जब जाने कि भस्म हुआ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अथ सामान्यगुणाः ॥ मृगविलोचनि कुंजर-
गामिनी शृणु वदाम्ययि लोहगुणानहम् ॥
सुविधिमारितमेव हरत्ययः कृमिसमीरण
पांडुविषज्वरान् ॥ १४० ॥ भ्रमवमिश्वसन-
ग्रहणीगदान् कफजराकसनक्षयकामलाः ॥

अरुचिपीनसपित्त प्रमेहकान् गुदजगुल्मरुगा-
मसमीरणात् ॥ १४१ ॥

टीका—अथ साधारण गुण-हे मृग के सरीखे नेत्र वाली ! हाथी के सरीखे गमन करने वाली, कृमिरोग, वातरोग, पांडु, विष, ज्वर, भ्रम, वांति, श्वाँस, संग्रहणी, कफ, जरा, कास, क्षय, कामला, अरुचि, पीनस, पित्त, प्रमेह, अर्श, गुल्म, आमवात ये जाते हैं ॥ १४० ॥ १४१ ॥

प्लीहस्थौल्यविनाशनं वलकरं कांतजना-
नन्ददं क्षीणत्वं विधुनोति दृष्टि जनकं
शोफापहं कुष्ठनुत् ॥ भक्तं शुद्धरसेंद्रसंयुत-
मिदं सर्वामयध्वंसनं कांताच्छे‸ष्ठरसायनं
नहि परं कांतेऽस्ति विंबाधारे ॥ १४२ ॥

टीका—प्लीह, स्थूलता इन रोगों को हरे, वलको बढ़ावे, स्त्री को सुख देवे, क्षीणता मिटावे, दृष्टि निर्मल करे, सोजा दूर करै, कुष्ठ हरै, जो शुद्ध पारे संग सेवन करे तो सर्व रोग जावें, हे विंव-फल समान अधर वाली प्रिये ! लोह से श्रेष्ठ और रसायन नहीं है ॥ १४२ ॥

अथपक्कदोषाः ॥ विषं क्लेदं करोत्येवं वीर्यं कांतिं निहंति च ॥ अपक्वं हि यतो लोहं ततः सम्यग्विपाचयेत् ॥ १४३ ॥

टीका—अथापक्कदोष-अपक्क लोह विष और जीमैंलाना पैदा करै. वीर्य और कांति को नाश करै इस वास्ते शुद्ध भस्म लेवे ॥ १४३ ॥

अथ शान्तिः ॥ खंडमाक्षिक संयुक्तमेला-चूर्णं दिनत्रयम् ॥ विकारो लोहजस्तस्य भुक्त्वा नाशं समाप्नुयात् ॥ १४४ ॥

टीका—अथ लोह विकाशान्तिः-खाँड़ और मधु साथ इलायची चूर्ण तीन दिन सेवन करै तो लोह विकार जावे ॥ १४४ ॥

अथान्यः ॥ सिंधूत्थं त्रिवृताचूर्णं सेवितं कोष्णवारिणा ॥ लौहजा विकृतिस्तस्य विनश्यति न संशयः ॥ १४५ ॥

टीका—अथ अन्य प्रकार-सैंधव लवण और निशोत्तर चूर्ण गरम जल से पीवे तो लोह विकार जावे ॥ १४५ ॥

अन्यच्च ॥ सितया मधुना वापि श्वेत-दुर्वारसं पिवेत् ॥ विकारं लोहजंत्यक्त्वा सुखमेव हि जीवति ॥ ॥ १४६ ॥

टीका—अथवा दूर्वारस शक्कर वा मधुसंग पीवे तो लोह विकार जावे और सुख से जीवेगा ॥ १४६ ॥

अथ लोहयोनिरक्षामन्त्रः ॥ ॐमृतोद्भवाय फट् ॥ अथ लोहमर्दनमन्त्रः॥ ॐ अमृतो-द्भवाय स्वाहा ॥ अथ बलिदानमन्त्रः ॥ ॐ नम श्चंडवज्रपाणये महायक्षसेनाधि-पतये कुरु कुरु महाविद्याविलाय स्वाहा ॥ अथ भक्षणमन्त्रः ॐ अमृतं भक्षयामि स्वाहा ॥ इति मन्त्राः ॥ अथानुपानम् ॥ रसराजयुतं लोहं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ भार्ङ्गी त्रिकटुकक्षौद्रयुतं धातुविकारनुत् ॥१४७॥

टीका—अथ लोहयो निरत्था मन्त्रः ॐ अमृतो-द्भवायफट् । अथ लोहमर्दनमन्त्रः ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा अथ बलिदानमंत्रः-ॐ नमश्चंडवज्रपाणये महाक्षय सेनाधिपतये कुरु कुरु महाविद्याविलाय स्वाहा । अथ भक्षणनंत्रः-अमृतं भक्षयामि स्वाहा । इति मंत्राः । अथानुपानम्-सर्व रोग में लोह भस्म पारा संग देना, धातु विकार में भारंग की मूल, शुंठी, मिरच, पिपरी, मधु संग देना ॥ १४७ ॥

रसगंधयुतं लोहं माक्षिकेण कफप्रणुत् ॥
चातुर्जातसितासार्धं रक्त पित्तं.जायेत्सुधीः ॥१४८॥

टीका—कफ रोग में पारा, गंधक, मधु संग रक्तपित्त में तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर, शक्कर संग देना ॥ १४८ ॥

पुनर्भू रजसा युक्तं गोदुग्धेन वलप्रदम् ॥
काथे पौनर्नवे पांडुं खंडयेल्लोहमेव हि ॥१४९॥

टीका—वलवृद्धि के वास्ते पुनर्नवा के चूर्ण और गौ के दूध संग पांडु रोग में पुनर्नवा के काढे में देना ॥ १४९ ॥

निशामधुयुतं वापि पिप्पलीमाक्षि-
कान्वितम् ॥ प्रमेहान्विविधान्हंति
सशिलाजतु कृच्छ्रकान् ॥ १५० ॥

टीका—प्रमेह में हलदी और मधु संग वा मधु पिप्ली संग, मूत्रकृच्छ्र में शिलाजीत संग देना ॥ १५० ॥

वृषायः पिप्पलीद्राक्षामाक्षिकैर्वटिका
कृता ॥ जयेत्पंचविधं कासमायास-
मिव चक्रधृक् ॥ १५१ ॥

टीका—पंचविध कास रोग में अड्सा, लोह, द्राक्षा, पिप्पली, मधु इनकोगोली बनाके देना ॥ १५१ ॥

धातुकांतिप्रदं चेत्थं तांबूलनाग्निदीपनम् ॥
देहं लोहसमं कुर्यात् सेवनाद्विधि पूर्वकम् ॥ १५२ ॥

टीका—तांबूल के (पान) डाले लेने से धातु, कांती और जठराग्नि बढ़ती है. जो विधि पूर्वक सेवन करे तो देह लोह सरीखी होवे ॥ १५२ ॥

अथ मंडूरम् ॥ ये गुणा लोह के प्रोक्तास्ते

गुणा लोहकिट्ट के ॥ अक्षकाष्ठेन संतप्तं गोमूत्रे वारसप्तकम् ॥ १५३ ॥

टीका—अथ मंडूरविधि-जो गुण लोह में हैं सो लोह कीट में भी हैं. लोह का कीट घहेड़े की लकड़ी की अग्नि में तपा के गोमूत्र में सात घेर बुझावै ॥ १५३ ॥

निर्वाप्य चूर्णयेत्पश्चान्मर्दयेत्सुरभीजलैः ॥
एकं गजपुटं दत्त्वा मंडूरंसर्वकार्यकृत् ॥ १५४ ॥

टीका—फिर चूर्ण करके गोमूत्र में खरल करे सुखाय गजपुट देवे तो शुद्ध सब कार्य करने वाला मंडूर होवे ॥ १५४ ॥

लोहवत्सर्वमाख्यातं सेवनादिकमस्य वै ॥ ताम्रवत्पित्तलं कांस्यं जानी-यान्मारणादिषु ॥ १५५ ॥

टीका—इस मंडूरका गुण अवगुणशांति अनुपान लोहवत् है. कांस पीतल का मारना गुणादि अनु-पान वगैरे ताम्रवत् जानना ॥ १५५ ॥

अथ धातुसेविनो वर्ज्यानि ॥ राजिकामद्य-

माषान्नं तैलमम्लरसं तथा ॥ पत्रशाकं न सेवेत लोहभक्षी कदाचन ॥ १५६ ॥

टीका—अथ धातु सेवने वाले को वर्जनीय पदार्थ राई, मदिरा, उड़द के व्यंजन, तेल, खटाई, पत्ते की भाजी ॥ १५६ ॥

कूष्मांडं कदलीकंदं करमर्दं च कांजिकम् । कारवेल्लं करीरं च पट्ककारादिकंत्यजेत् ॥१५७॥

इति श्री पं० रघुनाथप्रसाद विरचितायामनुपान तरंगिण्यां प्रथमा वीचिः ॥ १ ॥

टीका—कूष्मांड जिसको कोहला और कुम्हडा और भूरा भी कहते हैं और केले का कंद करोंदा कांजी, करेला करील इनको न खावे ॥ १५७ ॥

इति श्रीमद्रमणिविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी टीकाया नौकाख्यायां प्रथमकोष्टकः ॥ १ ॥

अथोपधातुविधिः ॥ तत्रोपधातुसंख्या ॥

माक्षिकं तुत्थकं तालं नीलांजनमथाभ्रकम् ॥ मनःशिला च रसकं प्राहुः सप्तोपधातवः ॥१॥

टीका—अथोपधातुविधिः—तत्र उपधातुसंख्या-सोनामक्खी १ नीलातूथा जिसको मोरतूथा और तूतिया भी कहते हैं २, हरिताल ३, सुरमा ४, अभ्रक ५, मनशिला, ६ खपरिया ७, ये सात हैं ॥ १ ॥

तत्रादौ हेममाक्षिकशोधनम्॥ भागत्रयंकांचनमाक्षिकस्य सिंधुत्थभागैकमयःकटाहे ॥ जंबीरनीरैः फलपूरजैर्नीरैर्विपाच्यं ललनेऽग्निना वै ॥ २ ॥

टीका—तहाँ प्रथम सोनामक्खी विधि—तत्र शोधन—तीन भाग सोनामक्खी, एक भाग सैंधव लवण, लोहकी कडाही में डाल के जंभीरी वा बिजौरा के रसके साथ पचावै ॥ २ ॥

यावत्कटाहं भजतेऽरुणत्वं तावद्विघट्टेदयिलोहदर्व्या ॥ पश्चात्स्वयं शीतलतामुपेतत्तार्यं शुद्धं सुरसेषु योज्यम् ॥ ३ ॥

टीका—जब तक कड़ाह लाल न होवे तबतक लोह की कलछी से घोटता जावे. फिर वह उतार ठण्डा भए पर रस क्रिया में युक्त करै ॥ ३ ॥

अथ मारणम् ॥ कुलत्थस्य कषायेण वाज-
मूत्रेण मर्दयेत् ॥ वा तैलेनारविंदाक्ति-
तक्रैर्वा स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ४ ॥

टीका—अथ सोनामाखी मारणम्—सोनामाखी
को कुलथी के काढ़े में वा बकरे के मूत्रमें वा तेल
में वा छाँछ में खरल करै ॥ ४ ॥

पश्चात्संपुटके रुद्ध्वा पुटेद्गजपुटे हितत् ॥
रक्तवर्णं मृतं सम्यक् सर्वकार्येषु योजयेत् ॥५॥

टीका—फिर शराव संपुट में रखके गजपुट देवे
तो लाल भस्म होवे सो सर्वकार्य में युक्त
करना ॥ ५ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ भागैकं गंधकं शुद्धम्
चतुर्भागं सुमाक्षिकम् ॥ संमर्द्यैरंडतैलेन
ततो नागपुटे पुटेत् ॥ ६ ॥

टीका—अथ दूसरी विधि—एक भाग गंधक,
चारभाग शुद्ध सोनामाखी, एरण्ड के तेलमें मर्दन
कर गजपुट देवे ॥ ६ ॥

सिंदूराभं माक्षिकस्य भसितं भवति ध्रुवम् ॥
अनेकैर्वैद्यशास्त्रज्ञैः कथितं प्रियवल्लभे ॥७॥

टीका—तो सिंदूरवर्ण माक्षिक भस्म होता है. ऐसा अनेक वैद्यशास्त्रज्ञों ने कहा है ॥ ७ ॥

अथगुणाः ॥ वृष्यं स्वर्यं हि चक्षुष्यं व्यवाय्यपि रसायनम् ॥ हंति वस्त्यर्तिशोफाशोंमेहकुष्ठोदरक्षयान् ॥ ८ ॥

टीका—अथ स्वर्णमाक्षिकगुण वाजीकरण है. स्वर शुद्ध करता है. नेत्र रोग हरता है. स्त्रीसंग की रुचि बढ़ाता है. रसायन है. वस्तिपीड़ा शोफ, अर्श प्रमेह, कुष्ठ. उदररोग, क्षय इनको हरता है ॥ ८ ॥

पांडुरोगं विषं पित्तं कामलां च हलीमकम् ॥
वातं वातात्मजः पुत्रं रामणस्य यथाऽहनत् ॥९॥

टीका—जैसे रावण के पुत्र को हनुमानजी मारते भये वैसे पांडु, विष, पित्त, कामला, हलीमक, वात रोग इनको नाश करता है ॥ ९ ॥

अथापक्कदोपास्तच्छांतिश्च ॥ अपक्काद्विविधा

रोगा भवंति स्वर्णमाक्षिकात् ॥ कुलत्थस्य कषायं वा तच्छांत्यै दाडिमत्वचम् ॥ १० ॥

टीका—अथ अपक्व दोष और शांति कहते हैं. अधपक्की सोनामाखी से नाना प्रकार के रोग होते हैं. वे रोग कुलथी के काढ़ा पीने से वा दाड़िम के छालसें शाँत होते हैं ॥ १० ॥

अथानुपानम् ॥ मधुपिप्पलिसंयुक्तं क्षय-श्वासभ्रमादिकान् ॥ हंति रोगचयं विष्णु-र्यथा चक्रधरोऽसुरान् ॥ ११ ॥

टीका—अथानुपान-मधु पिप्पली संग लेने से पहिले कहे हुए रोगों को हरता है, जैसे चक्र धारण करके विष्णु असुरों के ॥ ११ ॥

अथ रौप्यमाक्षिकविधिः ॥ कर्कोटीस्वर-सैर्वापि मेष शृंगीरसेन वा ॥ जंभीरस्य रसै-र्वापि भावयेदातपे खरे ॥ १२ ॥ विमला शुद्धिमायाति शुद्धचित्ते न संशयः ॥ स्वर्ण-माक्षिकवत्सर्वं मारणादिकमस्य वै ॥ १३ ॥

टीका—अथ रूपा मक्खीविधिः-ककोड़ा के रस

में वा मेढासींगी के रस में वा जंभीरी के रस में घोट के तीक्ष्ण सूर्य ताप में रखने से शुद्ध होता है. मारण गुण अनुपान सोनामाखी तुल्य जानना ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ तुत्थकविधिः ॥ तुत्थं कपोतौतु परीपसार्द्धं दत्त्वा ततष्टंकणकं दशांशम् ॥ पाच्यं ततः कौक्कुटके पुटेतद्दध्ना पुनर्वै मधुना मृतं स्यात् ॥ १४ ॥

टीका - अथ मोरतुत्थ विधि-नीलाथोथा को कबूतर और बिल्ली की विष्टा समान मिला के दशांश टंकण संयुक्त एक बितस्ति गहिरे खाढ़े में पुट दे फिर एक पुट दही की और एक पुट मधुकी दे तो शुद्ध भस्म होता है ॥ १४ ॥

अन्यच्च ॥ ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणांघ्रियुक् ॥ त्रिधैवं पुटितं शुद्धं वांति भ्रांतिविवर्जितम् ॥ १५ ॥

टीका—अथवा बिल्ली के विष्टा की समान तूतिया और तूतिया से चौथा भाग सोहागा मिला

के सहत में खरल करके पुट देवे. ऐसे तीन पुट में वांति भ्रान्ति रहित होता है ॥ १५ ॥

इति शोधनमारणे ॥ अथ गुणदोषौ ॥
तुत्थ भस्म कफं हंति पामां कुष्ठं विषं कृमीन् ॥ चक्षुष्यं लेखनं भेदि शुद्धिहीनं हि दोषकृत् ॥ १६ ॥

टीका—अथ गुण और दोष-तुत्थ भस्म कफ-नाशक है. कंडू, कुष्ठ, विष, कृमि हरता है. नेत्ररोग हरता है. फूली वगैरे काटता है. मलको फोड़ता है, और अशुद्ध रोग कारक है ॥ १६ ॥

अथ शांतिः ॥ जंबीरस्वरसं वापि लाजा वारिसमन्विताः ॥ लामज्जकजलं वापि पिबेत्तुत्थकशांतये ॥ १७ ॥

टीका—अथ तुत्थ विकार शांति-जंभीरी का रस वा चावल की खीलैं जिनको कुरमुरा और धानी और लाई भी कहते हैं तिन्है जल संग सेवन करै वा खस जिसको वाला भी कहते है तिसका अर्क पिये तो तुत्थ विकार शांत हो ॥ १७ ॥

अथानुपानम् ॥ नवनीतयुतं कंडूविषकुष्ठ
निवारणन् ॥ कृमिरोगं विडंगेन तांबूलेन
कफं जयेत् ॥ १८ ॥

टीका—अथ अनुपान-माखन संग खाज, विष
कुष्ठ निवारण करता है. बायविडंग में कृमि नाशक
है. पान में कफ हरता है ॥ १८ ॥

माक्षिकेणांजितं हंति चक्षूरोगं सुदारुणम् ।
एरंडतैलसंयुक्तं भेदयेदिदमेव हि १९ ॥

टीका—मधु संग अंजन करने से नेत्र रोग
रहता है. एरंड के तेल संग रेचन है ॥ १९ ॥

अथ हरितालविधिः ॥ तत्र शोधनम् ॥
तालकं त्रिफलाक्काथे स्वेदयेत्कांजिकेतथा ॥
कूष्मांडस्वरसे तैले यामं यामं पृथक्तु वा ॥
दोलायंत्रे सुधानीरे शुद्धं स्यात्सर्वकार्य-
कृत् ॥ २० ॥

टीका—अथ हरितालविधिः-तत्र शोधन-हर-
तालको त्रिफला के काढ़े में और कांजी में और भूरा
कुम्हाड़ा के रसमें, तेल में न्यारी न्यारी पहर

को आंच दोला यन्त्र से देना अथवा चूना के जल में पहर चार दोला यंत्र में स्वेदन करना तो शुद्ध सर्व कार्य योग्य होता है ॥ २० ॥

अथ मारणम् ॥ अश्वत्थस्वरसैस्तालं मर्दये-द्दिनविंशकम् ॥ गोलकंतु ततः कृत्वा शोषयेदातपे दृढम् ॥२१॥ पश्चाद्भांडेऽश्वत्थ भूतिं पूरयेदर्द्धके दृढाम् ॥ शनैर्गोलं निधायाथततो भूतिं प्रपूरयेत् ॥ २२ ॥ संयंत्र्य मुद्रयेपश्चाच्चुल्ल्यांसंस्थाप्य दीपयेत् ॥ चतुर्यामावधिं वह्निं स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥२३॥

टीका—अथ मारण–पीपर के रस में बीस दिन हरिताल खरल करके गोला बना के धूप में खूब सुखाले ॥ २१ ॥ फिर एक हंडी में पीपर की भस्म आधी भरै खूब दबा के सिर पर गोला धरके ऊपर वही भस्म फिर दबा के भरै और हंडी को मुद्रा देके चूल्हे पर चढ़ाय चार पहर आंच दे शीतल भये भस्म युक्ति से निकालै ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यः प्रकारः ॥ तालं पुनर्नवानीरैः पुटे-

देकदिनंप्रिये ॥ कृत्वा तद्गोलकं पश्चाच्छो-
षयेदातपे सुधीः ॥ २४ ॥

टीका—दूसरी विधि—हरिताल को पुनर्नवा के रस में एक दिन खरल करके गोला बना कर सुखावे ॥ २४ ॥

तद्भूत्यार्धभूते भांडे गोलकं न्यस्य पूरयेत् ॥
वर्षाभूभस्मना मुद्रां विदध्याच्चापि शोषयेत् ॥२५॥

टीका—फिर पुनर्नवाकी भस्म आधी हंडी में भरके खपर से गोला रखके फिर भस्म दबा के भर-के मुद्रा देके सुखा देना ॥ २५ ।

चुल्ल्यां खवेदयामांतमग्निदानात्सुनिश्चितम् ॥
भवेद् भूतिस्तुगुंजैका भक्षिता रुग्यनाशिनी॥२६॥

टीका—चूल्हेपर चढ़ा के चालीस ४० पहर की आंच से भस्म होता है. एक रती खाने से सर्व रोग नाश होते हैं ॥ २६ ॥

अथान्यः ॥ द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं तालकं न्यस्य यंत्रके ॥ ऊर्ध्वपातनके दत्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ स्वांगशीतं तमुद्-

घात्य चौर्ध्वलग्नं हि तालकम् ॥ गृहीत्वा भावयेत्पश्चात्पूर्ववत्पाचयेत्ततः ॥ २८ ॥ त्रिःसप्तपुटकैरेवं तालभूतिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ एवं हि कन्यकाद्रवैः शतकृत्वो विपाचयेत् ॥२९॥

टीका—अथ तीसरी विधि-गूमा के रसमें हरिताल घोट के डमरू यन्त्र में आंच देवे. ठंढे हुए पीछे ऊपर की हाँड़ी में लागा छुड़ा के फिर घोट के आंच देवे. ऐसे एकईस २१ आंच में भस्म होता है. ऐसे ही कुमारी पाठे के रस सौ १०० आंच से भस्म होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ गुणाः ॥ हंति वातामयान् सर्वान् कफपित्तगुदामयान् ॥ हरितालं मृतं कुष्ठं प्रमेहं वै ज्वरादिकान् ॥ ३० ॥

टीका—अथ हरितालगुण-संपूर्ण वातरोग, कफ रोग, पित्त रोग, गुदा के रोग, कुष्ठ, और ज्वरादिक सब हरता है ॥ ३० ॥

अथाशुद्धदोषाः ॥ अशुद्धं पीतवर्णं यन्मृतं तालं स धूमकम् ॥ वातपित्तमयान्कुष्ठम् देहनाशं करोति च ॥ ३१ ॥

अल्पाहारं प्रकुर्वीत नीरमल्पं प्रिये पिबेत् ॥
सदुग्धां लप्सिकां पीत्वा भक्षयेच्च सितो-
पलाम् ॥ ३८ ॥

टीका—और अल्प आहार करै. जल थोड़ा पीवे और दूध संग लपसी पीवे. मिश्री खावे ॥ ३८ ॥

सायंतनाशने खादेत्कृसरां लवणं विना ॥
वर्जयेत्प्रमदासंगं स्वपेद्धन्वंतरिं स्मरन् ॥ ३९ ॥

टीका—सन्ध्या को अलोनी खिचड़ी खावे स्त्रीसंभोग त्यागे, और धन्वतरिका स्मरण करते करते सोवै ॥ ३९ ॥

शृंगबेरांबुना वातं शूल सूतिगदं जयेत् ॥
घृताक्त कृसरां खादेत्पथ्ये दुग्धौदनं तु वा ॥४०॥

टीका—वातरोग शूल सूतिका रोग में अदरख के रस में लेवे; अदरख को आदा भी कहते हैं, पथ्य में घी. खिचड़ी वा दूधभात भी खाता रहै ॥ ४० ॥

भेषजादनमारभ्य मुहूर्तद्वितयावधि ॥
पानीयं न पिबेद्धाले पिपासुरपि रोगवान् ॥४१॥

टीका- जिस समय औषध खाय तब से दो मुहूर्त रोगी प्यासा हो तो भी पानी न पीवे ॥ ४१ ॥

शृतशीतांबुना तालमशक्तः पुरुषः पिबेत् ॥
सन्निपातं वातगुल्मं वायुमर्धांगकं जयेत् ॥ ४२ ॥

टीका—अशक्त पुरुष शक्ति प्राप्ति के वास्ते दूध गरम कर ठंडा करके उसमें लेवे और इसी अनुपान से सन्निपात, वातगुल्म, वातरोग, अर्धांग इनमें देवे ॥ ४२ ॥

निर्बलो बलसंप्राप्त्यै जातीफलसमन्वितम् ॥
रक्तपित्ते निशासार्धं वीर्यस्तंभाय पर्णयुक् ॥ ४३ ॥

टीका—बल प्राप्ति के वास्ते जायफल में देवे, रक्त पित्त में हलदी संग, वीर्यस्तंभन को पान में दे ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वश्वासं शिवायुक्तं शंठ्यालस्यं जयेत्सुधीः ॥
त्रिसुगंधान्वितं तालमास्यदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ४४ ॥

टीका—ऊर्ध्व श्वांस में हरड़ युक्त, आलस्य में सोंठ संग, मुखदुर्गंध जाने को तजपत्र इलायची में देना ॥ ४४ ॥

जलोदरमजामूत्रैः प्रमेहं स्वरसारसै ॥
जातिपत्रीकुंकुमाभ्यां प्रतिश्यायं निवारयेत् ॥४५॥

टीका—जलोदर में बकरी के मूत्र संग, प्रमेह में तुलसी के रस संग, जायपत्री केसर संग प्रतिश्याय में, जिसको जुकाम और सरदी भी कहते हैं ॥ ४५ ॥

अग्निमांद्यं जयेत्कांते पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥
कासं क्षयं सितायुक्तं नाशयेद्विषमज्वरान् ॥४६॥

टीका—मंदाग्नि में मधु, पिप्ली संग, कास, क्षय, विषम ज्वर में शक्कर संग देना ॥ ४६ ॥

लवंगतजकर्पूरैर्वीर्यस्तंभाय तालकम् ॥
सेवेत गोक्षीरयुतं वीर्यवृद्धये घटस्तनि ॥ ४७ ॥

टीका—फिर वीर्यस्तंभ के वास्ते लवंग, तज, कपूर संग, वीर्यवृद्धि के वास्ते गौके दुग्धसंग ॥ ४७ ॥

अथ नीलांजनविधिः ॥ जंबीरस्यांबुना भाव्यं नीलांजनमयथातपे ॥ शोषयेच्च दिनैकेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ४८ ॥

टीका—अथ नीलांजनविधि—सुरमा को जंभी-

रीके सरको पुट देके एक दिन धूपमें सुखा ले तो शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥

अथान्यः ॥ सोवीरं कांजिके स्विन्नं यामै-
केन विशुद्ध्यति ॥ अथ गुणाः ॥ सौवीरं-
शीतलं ग्राहि चक्षुष्यं मधुरं स्मृतम् ॥
सिध्मानक्षयपित्तास्रकफं हंति विशेषतः ॥४९॥

टीका—अथ दूसरी विधि–सुरमा एक पहर कांजी में दोलायन्त्र में पचावे तो शुद्ध हो–अथ गुण–सुरमा शीतल है. ग्राही है. नेत्र निरोग करता है. मीठा. है. सेहुवां, क्षय, पित्त, रक्त, कफ इनको मारता है ॥ ४९ ॥

नीलांजनमतीसारं ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥
काश्मीरनागफेनाभ्यामरविंदविलोचने ॥ ५० ॥

टीका—और केशर अफ़ीम संग संग्रहणी अतीसार को भी दूर करता है ॥ ५० ॥

समं वै पारदं नागं द्वयोस्तुल्यमयेंऽजनम् ॥
शुद्धकर्पूरकं बाले पारदात्पंचमांशकम् ॥५१॥
विमर्द्य खल्वके सम्यगंजयेन्नेत्रयुग्मके ॥
नेत्रदोषविमुक्तः सन्सुखं सौंदर्यमाप्नुयात् ॥५२॥

टीका—पारा सीसा समभाग, दोनों के सम सुरमा, पारा से पंचमांश शुद्ध कपूर, सबको खरल करके अंजन करे तो नेत्ररोग जावे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सौवीरं सैन्धवं कुष्ठं बीजान्येडगजस्य च ॥
विडंगं सर्षपान्पिष्ट्वा कांजिकेन प्रलेपयेत् ॥
सिध्मानं मंडलं कुष्ठं दद्रुमेव जयेत्क्षणात् ॥५३॥

टीका—सुरमा, सैंधव लवण, कूट जिसको उपलेट भी कहते हैं, पमाड़ के बीज, वायविडंग, सरसौं कांजी में पीस के लगावे तो सेहुवाँ, मंडल, कुष्ठ, दाद इनको नाश करै ॥ ५३ ॥

शर्कराज्ययुतं पित्तं कफं शुंठ्यभयागुडैः॥५४॥

टीका—पित्त रोगमें घी शक्कर संग, कफ रोग में हरड़, गुड़, सोंठसंग ॥ ५४ ॥

नीलांजनं कनकजं वरखं विशुद्धं हैयंगवेन ससितामधुनैकगुंजम् ॥ खादेन्नरः क्षयनिपीडित आशु कांते कांतिं लभेत् विपुलं बलमंबुजाक्षि ॥ ५५ ॥

टीका--शुद्ध सुरमा सोने का वर्क दोनों को

एकत्र कर माखन मिश्री सहृत संग एक रत्ती खावे तो हे कमलनयने ! क्षयरोग जावे और बहुत बल होगा ॥ ५५ ॥

अथाभ्रकविधिः ॥ तत्तु चतुर्विधम् ।
श्वेतं कृष्णं तथा पीतं धूम्रवर्णं क्रमात्प्रिये ॥ ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं प्राहुर्भिषग्वराः ॥ ५६ ॥

टीका—अथ अभ्रकविधि, सो अभ्रक चार प्रकार का है, श्वेत, कृष्ण, पीत, धूम्र. श्वेत ब्राह्मण, कृष्ण, क्षत्रिय, पीत वैश्य. धूम्रवर्ण शूद्र है ॥ ५६ ॥

कृष्णे हेमगुणान्प्राहुः श्वेते रौप्यगुणानपि ॥
पीते ताम्रारवंगादिगुणान् धूम्रं निरर्थकम् ॥५७॥

टीका—कृष्ण में सोने के गुण हैं. श्वेत में रूपे के गुण है. पीत में ताम्र, पित्तल वंगादि के गुण हैं. धूम्र निरर्थक है ॥ ५७ ॥

अन्यच्च ॥ नागं भेकं पिनाकाख्यं वज्रमभ्रं चतुर्विधम् ॥ नागमग्नौ सुसंतप्तं फूत्कारं कुरुते भृशम् ॥ ५८ ॥ भेकाह्वं दार्दुरं

शब्दं पिनाकं दलविस्तृतिम् ॥ वज्रमेव वरं तेषां विकारं न यतो व्रजेत् ॥ ५९ ॥

टीका—और भी भेद हैं. नाग १. भेद २, पिनाक ३, वज्र ४, ए चारभेद हैं. नाग जाति का अभ्रक अग्नि में तपाया फूंकार करना है. भेक मेंडक का शब्द करना है. पिनाक के वरख फैलने हैं. वज् ज्यों का त्यों रहता है. श्रेष्ठ है ॥५८॥५९॥

गृह्णीयाच्च ततो वज्रं जराव्याधिविनाशनम् ॥ कफवातकरं चाभ्रमशुद्धं मृत्युदं स्मृतम् ॥६०॥

टीका—इस वास्ते वज् ही ग्रहण करना. जो जराव्याधिका टालने वाला है. जो अशुद्ध है सो कफ वातका करने वाला है और मृत्यु कारक है ॥ ६० ॥

तस्माद्विशोधनं वक्ष्ये विशेषामयनाशनम् ॥ गगनं वह्निसंतप्तं गवांक्षीरे विनिक्षिपेत् ॥६१॥

टीका—इस वास्ते शोधन कहते हैं. जो विशेष करके रोगनाशक है. अभ्रक अग्नि में तपा के गोके दूध में बुझा लेना ॥ ६१ ॥

भिन्नपत्रं ततः कुर्यात्तंडुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ भावयेदष्टयामांतमेवमभ्रं विशुद्धति ॥ ६२ ॥

टीका—फिर जुदे जुदे पत्र करके तांदुलिया जिसको चौलाई भी कहते हैं. और खटाई के रसमें आठ पहर भिजाय रखना तो शुद्ध होना है ॥ ६२ ॥

पश्चात्कांजिकसंपिष्टं कंबले व्रीहिसंयुतम् ॥
बध्वा संमर्दयेद्गाढं मृद्भांडे कांजिकान्विते ॥६३॥

टीका—फिर कांजी में पीस के चतुर्थांश व्रीहिसंयुक्त कंबल में बांध के एक बासन में कांजी भरके उसमें खूब मर्दन करना ॥ ६३ ॥

मर्दनाद्यद्गलेत्पात्रे धान्याभ्रं तं विदुर्बुधाः ॥
अथवा बदरक्वाथे निक्षिप्तं वह्नितापितम् ॥
मर्दितं सुदृढं शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥६४॥

टीका—जो मर्दन करने से पात्र में कंबल के छिद्रों में होके गिरता है उसको धान्याभ्र कहते हैं. अथवा अग्नि में तपा करके क्वाथ में बुझावे तो धान्याभ्र से भी उत्तम होता है ॥ ६४ ॥

अथ मारणम् ॥ अर्कक्षीरेण संपिष्टमभ्रकं गोलकीकृतम् ॥ संवेष्ट्यार्कदलैः पश्चात्संपुटेत्संनिरोधितम् ॥ ६५ ॥ पुटेद्गजपुटैनैवं

सप्तवारं प्रयत्नतः ॥ कपर्दिनो जटाक्वाथैरेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ रक्तवर्णं भवेदभ्रं सर्व-कार्येषु योजयेत् ॥ ६६ ॥

टीका—अथ मारण-अभ्रक को आक के दूधमें खरल करके गोला बनावै फिर आक के पत्र ऊपर लपेट के संपुट करै॥ ६५॥ फिर गजपुट दे, ऐसे सात पुट दे फिर तीन पुट बड़की जटा के काढ़ेकी देतो लाल अभ्रक होता है सो सर्व कार्य में लेना ॥ ६६ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ मुस्ताशुंठ्योः पृथग्भागं षड्भागं शुद्धमभ्रकम् ॥ कांजिकाग्निरसैर्घस्त्रं मर्दितं पुटितं पुनः ॥ ६७ ॥

टीका—दूसरा प्रकार—नागर मोथा और सोंठ का एक एक भाग छे भाग शुद्ध अभ्रक को कांजी और अरनी के रस में मर्दन करके पुट देना ॥ ६७ ॥

मर्दयेत्त्रिफलाक्वाथेनैवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥
बलानीरैश्च गोमूत्रैर्मुशली शूरणद्रवैः ॥ ६८ ॥

टीका—और तीन गजपुट त्रिला के काढ़े में देना, और पारा जिसको चिकना भी कहते हैं,

उसके बोजको बल बोज कहते हैं, उसके रसमें और गोमूत्र में, मुसली के रसमें, शूरण के रसमें ॥ ६८ ॥

स्वरसास्वरसै रम्ये पृथग्दत्त्वा पुटत्रयम् ॥
गगनं सुमृतं रक्तं शुभ्रं रन्यमिदं भवेत् ॥६६॥

टीका—तुलसी के रस में इनमें तीन पुट जुदे जुदे दे तो मरा अभ्रक रक्तवर्ण रमणीक होता है ॥६६॥

अथान्यः प्रकारः ॥ वज्रीक्षीरैरर्कदुग्धैर्धेनुमूत्रैर्बलाजलैः ब्राह्मीरुदंतीस्वरसैर्वासाग्गिशाल्मलीद्रवैः ॥ ७० ॥ कूष्मांडस्वरसैरेवं दाडिमीसलिलैस्तथा ॥ वराक्काथेन गोजिह्वासलिलैरमृतद्रवैः ॥ ७१ ॥ जातीगोक्षुरमेघानां कषायैर्बर्बरीद्रवैः ॥ शंखपुष्पीरसैर्द्राक्षारसैर्मूलकजै रसैः ॥ ७२ ॥ राक्षसीतुलसीमुंडीविशालासलिलैरपि ॥ विदारीलतिकाभृंगीमदाक्काथैः पृथक् पृथक् ॥७३॥ सेतिकातपनक्काथैरुग्रगंधभृतैरपि ॥ सप्तकृत्वो विशालाक्षि पाचयेदभ्रकं ततः ॥ ७४ ॥

पुट देवे अथवा कुमारी पाठे के रसकी हजार पुट दे तो भी शुद्ध भस्म होता है॥ ७६॥

अथ गुणाः॥ वातपित्तकफान्मेहकुष्ठश्वास-
विषभ्रमान्॥ गुल्मकासक्षतक्षीणग्रहणी
भगंदरादिकान्हन्यादभ्रं कामबलप्रदम्॥८०॥

टीका—अथ गुण वात, पित्त, कफ. प्रमेह, कुष्ट, श्वांस, विष, भूम, गुल्म, कास, क्षतक्षीण, संग्रहणी, पांडु, कामला और भगंदर आदिक रोग दूर करके काम और बलको देता है॥ ८०॥

अथापक्वदोषाः॥ अपक्वमभ्रकं यत्स्यात्तथा
चंद्रिकयान्वितम्॥ करोति विविधान् रोगा-
न्प्राणानपि क्षयं नयेत्॥ ८१॥

टीका—अथ अपक्व दोष-जो अपक्व और चमक-युक्त अभूक है सो नाना प्रकार के रोग करता है और प्राणों का भी घातक होता है॥ ८१॥

अथ तच्छांतिः॥ पिष्ट्वांबुना पिबेत्कांते
धात्रीफलमतंद्रितः॥ अपक्वाभ्रविकारेण मुक्तः
स्याद्दिवसत्रयैः॥ ८२॥

टीका—इस वास्ते इसकी शांति कहते हैं. अथ

शांति, आमला जलसे पीस के तीन दिन पिये तो अभ्रक विकार जावे ॥ ८२ ॥

अथानुपानम् ॥ गुञ्जैकं वा द्विगुंजं वा त्रिगुंजं गगनं नरः ॥ गुंजाचतुष्टयं वापि भक्षयेद्रोगशांतये ॥ ८३ ॥

टीका—अथ अनुपान-शुद्ध अभ्रक भस्म एक रत्ती वा वा दो वा तीन वा चार तक बल देख के रोग शांति के वास्ते भक्षण करना ॥ ८३ ॥

मधुपिप्पलिसंयुक्तं कासं श्वासं विषं भ्रमम् ॥ नाशयेत्कामलांगुल्मंपांडुं संग्रहणीमपि ॥८४॥ कफक्षयं प्रमेहं च ललनोत्तमभूषणे ॥ वात-पित्तकफान् कुष्ठं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥८५॥

टीका—कास, श्वांस, विष, भ्रम, कामला, गुल्म, पांडु, संग्रहणी, कफक्षय, प्रमेह, वात, पित्त, कफ, कुष्ठ, जीर्णज्वर, अरोचक, इन रोगों की शांति के वास्ते मधुपिप्पली में ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

विडंगत्र्यूषणैर्युक्तं वल्लमेभ्रं निषेवितम् ॥ पांडुसंग्रणीशूलक्षयश्वासारुचिप्रणुत् ॥८६॥

तथा मकुष्ठमंदाग्निकोष्ठरुक्कासमेहनुत् नव-॥
कंजविशालाक्षिशुक्रबुद्धि विवर्धनम्॥८७॥

टीका—पांडु संग्रहणी, शूल, क्षय, श्वांस, अरुचि, आम, कुष्ठ, मंदाग्नि, कोष्टरोग, कास, प्रमेह, इन रोगों में वायविडंग, सोंठ मिरच, पीपल इनके चूरण में दे. और इसी अनुपान में धातु और बुद्धिकी वृद्धि करता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

शिलाजतुकणाचूर्णमाक्षिकैः सर्वमेहनुत् ॥
क्षयं स्वर्णान्वितं हंति धातुवृद्धि करोति च ॥८८॥

टीका—शिलाजीत, पीपल का चूर्ण सहत संग प्रमेह को हरता है. क्षयको सोने के वरख संग नाश करता है और धातु बढ़ाता है ॥ ८८ ॥

कायस्थागुडसंयुक्तं वातलोहितकं जयेत् ॥
रक्तपित्तं निहंत्यभ्रं द्राविडीसितयान्वितम् ॥८९॥

टीका—वात रक्त में गुड़ हरड़ संग रक्तपित्त में इलायची शक्कर संग देना ॥ ८९ ॥

त्रिकटुत्रिफलात्रिसुगंधसिता—गजकेशर
माक्षिकसंयुतखम् ॥ घ्नु ति पांडुगदं
क्षयमुत्पललोचने सत्पथगाग्रसरे ललने ॥९०॥

टीका—सोंठ, मिरच, पीपल हरड़, आमला, बहेड़ा, तज, पत्रज, इलायची, शक्कर, नागकेशर इनका चूरण और सहत में अभ्रक ले तो हे सती में श्रेष्ठ कमल लोचने! पांडु और राजयक्ष्मा जाता है॥ ९०॥

भूधात्रीशर्कराव्यालदंष्ट्रैलाक्षीरसंयुतम्॥
मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहं च हंत्यभ्रंनवयौवने॥ ९१॥

टीका—भूआमला, शक्कर, गोखरू, इलायची, इनका चूरण और गाई के दूध में अभ्रक लेवे तो मूत्रकृच्छ्र प्रमेह जावे॥ ९१॥ ॥

सितोपलाऽमृतासत्वयुक्तं मेहगणं जयेत्॥
मध्वाज्याग्यारजोयुक्तंवीर्यकृन्नेत्ररोगहृत्॥ ९२॥

टीका—प्रमेह मात्रमें गिलोइ का सत्व और मिश्री संग, त्रिफलाका चूर्ण और मधु घी संयुक्त लेवे तो वीर्य वृद्धि हो और नेत्ररोग जावे॥ ९२॥

आरुष्करयुतं हन्यादर्शांसि विविधानि वै॥
धातुस्तंभकरं भंगासंयुतं मधुरस्वरे॥ ९३॥

मर्दनाच्छुभखल्वके ॥ नागमाता विशुद्धा
स्याच्छुद्धचित्ते वरांगने ॥ १०० ॥

टीका—चौथी विधि-गाई के मठा में एक प्रहर खरल करे तोभी मनशिल शुद्ध होता है ॥ १०० ॥

अथ गुणाः ॥ ज्वरं नेत्रामयं श्वासं कासं
भूतभयं कफम् ॥ कृच्छ्रं विषं मनोगुप्ता
हंति कुष्ठादिकामयान् ॥ १०१ ॥

टीका—अथ गुण-ज्वर, नेत्ररोग, श्वास, कास भूत पीड़ा, कफ, कृच्छ्र, विष और कुष्ठादि रोगों को हरता है ॥ १०१ ॥

अथानुपानम् ॥ पिप्पलीलिंबुफलाभ्यां
शिला विमर्द्यासुकेरिवल्लिरसैः ॥ गुटिका
ज्वारामयघ्नी त्रिदोषभूतं ज्वरं निहंत्येव ॥१०२॥

टीका—अथ अनुपान-पीपल, नींब के फल, मैनशिलकरेला के रसमें घोट के चना प्रमाण गोली त्रिदोषज्वर में देना ॥ १०२ ॥

शिलाया द्विगुणं शंखमर्धं मारीचकं रजः ॥
सैन्धवं स्याच्चतुर्थांशं चूर्णंनेत्रगदापहम् ॥१०३॥

टीका-मन शिला एकभाग शंख दोभाग, मिरच मनशिल से आधा सैंधवलोन मिरच से आधा भाग इनका सूक्ष्म चूरन नेत्ररोग को नाश करता है ॥१०३॥

शुक्रं तिमिरकं हंति मात्ति केण च पिच्चटम् ॥
अर्बुदं दधितोयेन कंजाच्चि प्रमदोत्तमे ॥१०४॥

टीका—फूली तिमिर सहित संग हरता है और चिपकापन भी जाता है. दही के पानी से अर्बुद रोग हरता है ॥ १०४ ॥

कणामरिचसंयुक्ता शिलापिष्टांबुनांजिता ॥
भूतावेशहरा नेत्रे सन्निपातज्वरापहा ॥ १०५ ॥

टीका-पीपल मिरच संग जलमें पीस गोली करके अंजन करने से भूत और सन्निपात जाता है ॥१०५॥

भार्ङ्गी विश्वान्वितं श्वासं विषं स्वर्णसमन्वितम् ॥
वासकस्वरसव्योषैःकफं कासं जयेच्छिला ॥१०६॥

टीका—श्वाँस को भारंगी सोंठि संयुक्त; सोन संग विषको, सोंठ, मिरच, पीपल, अरूसे के रसमें कफ और कास को हरती है ॥ १०६ ॥

शिलैलार्जुनकासीसगृहधूमाब्द सर्जकैः ॥
सरोध्ररोचनैर्लेपः सर्पपः स्नेहसंयुतः ॥१०७॥

किलासं किटभं दद्रुं कुष्ठं पामां भगंदरम् ॥
इंद्रलुप्तमथार्शांसि हन्यादेव नृणामियम् ॥१०८॥

टीका—मैनशिल, इलायची, अर्जुन वृक्ष जिसको कौहा भी कहते हैं उसकी छाल, काशीश, घर का धुवां, नागरमोथा, राल, लोध, गोरोचन, सरसों का तेल लेप करने से किलास रोग, किटभरोग, दाद, कुष्ठ, खाज, भगंदर, इंद्रलुप्त, अर्श इतने रोग जाते हैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथाशुद्धदोषास्तच्छांतिश्च ॥ अशुद्धकुनटी कुर्याद्वांतिभ्रात्यादिकान् गदान् ॥ तच्छांत्यै त्रिदिनं पीत्वा मधुक्षीरं विशुद्ध्यति ॥१०९॥

टीका—अथ अशुद्ध दोष और दोषकी शान्ति-अशुद्ध मैनशिल उलटी, भ्रात्यादि रोग करता है, उसकी शान्ति के वास्ते तीन दिन मधु दूध पीवै ॥१०९॥

अथ खर्परशुद्धिः ॥ रसकं नरमूत्रेण पाचये-द्दिनसप्तकम् ॥ दोलके वाथ गोमूत्रे शुद्धि-मायाति खर्परः ॥ ११० ॥

टीका—अथ खपरिया शुद्धि—खपरिया को दोला-

यंत्र करके मनुष्य के मूत्र में सात दिन पचावे अथवा गोमूत्र में पचावे तो शुद्ध हो ॥ ११० ॥

अथ गुणाः रसको हरते रोगान् रक्तदोषं गुदामयम् ॥ जीर्णज्वरमतीसारं प्रदरादिगदानपि ॥ १११ ॥

टीका—अथ गुण—खपरिया गुदाके रोग, जीर्णज्वर, अतिसार इत्यादि रोग हरता है ॥ ११ ॥

अथ दोषास्तच्छांतिश्च ॥ अशुद्धाद्रसकाद्रोगा जायंते चेत्कथंचन ॥ गौमूत्रेण शमं यांति प्रकाशेन यथ तमः ॥ ११२ ॥

टीका—अथ दोष और शांति जो अशुद्ध खपरिया सेवन करे तो अनेक रोग हों. वे गोमूत्र पीने से शांत होते हैं ॥ ११२ ॥

अथानुपानम् ॥ एकांशं मारिचं चूर्णं द्वावंशौ रसकस्य च ॥ तद्द्वयोरष्टमांशेन नवनीतेन मर्दयेत् ॥ ११३ ॥ पश्चान्निंबुकनीरेण घृतं यावन्निगच्छति ॥ मर्दयेच्च ततः कृत्वा वटीं वल्लमितामियम् ॥ ११४ ॥ कणामाक्षिक-

संलीढा नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ ज्वरं धातु-
स्थितं घोरमर्शांसि प्रदरं तथा ॥ ११५ ॥
जीर्णज्वरं नेत्ररोगं पित्तार्त्तिं रक्तवैकृतिम् ॥
रक्तातीसारकं हन्यात्पथ्ये क्षीरोदनं हितम् ॥११६॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायाः-
मनुपानतरंगिण्यामुपधात्वनुपान
कथने द्वितीया वीचिः ॥२॥

टीका—अथ अनुपान-एक भाग मिरचा का चूरण दो भाग खपरिया के, दोनों के आठवे अंश गौके माखन में मर्दन करे. पीछे नींबू के रसमें मर्दन करे, जब तक घी न सूखा हो. जब चिकनाई जाती रहै तब तीन रत्ती की गोली एक मधु पीपल संग खावे तो विषमज्वर, धातुगत ज्वर, अर्श प्रदर, जीर्ण ज्वर, नेत्ररोग, पित्तरोग, रक्तविकार, रक्तातिसार इतने रोग जावें. पथ्य में दूधभात अथवा दूध रोटी देना ॥ ११३–११६ ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी
टीकाया नौकाख्यायां द्वितीयकोष्टक. ॥ २ ॥

यदा देवा विधिं गत्वा तारकासुरपीडिताः ॥
तदोवाचामरान्ब्रह्मा शृणुतादितिनंदनाः ॥ १ ॥

टीका—अथ रसोंका शोधन, मारण, अनुपान कहते हैं, तहां प्रथम पारे का कहते हैं, तहाँ भी प्रथम पारे की उत्पत्ति कहते हैं. जब देव तारकासुर दैत्य करके पीड़ित होते हुए, तब ब्रह्माके पास जाके विज्ञापन करते हुए कि, हे महाराज, हमको तारकासुर अति दुःख देता है. तब देवताओं से ब्रह्मा बोले कि, हे अदिति के पुत्र, तुम सुनो ॥ १ ॥

शिवशुक्रोद्भवेनायं मरिष्यति रिपुर्हि वाम् ॥
तदा देवाः समाजग्मुः शंकरं लोकशंकरम् ॥ २ ॥

टीका—महादेव के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र से तुह्मारा शत्रु तारकासुर मरेगा. ऐसा सुनके देवता सब लोगों का कल्याण करने वाले महादेवजी के पास गए ॥ २ ॥

विवाहं कारयामासुः पार्वत्या सह धूर्जटेः ॥
पश्चात्तयोर्गतः कालः सुरतं कुर्वतोमहान् ॥ ३ ॥

टीका—और शिव का विवाह पार्वती के संग कराते भये. फिर शिव पार्वती को सुरत करने करते बहुत काल व्यतीत भया ॥ ३ ॥

तदा वह्निं पुरस्कृत्य देवा जग्मुस्त्रिलोचनम् ।
दृष्ट्वा तान्व्रीडिता देवी हरं त्यक्त्वा रतोत्सुखा ॥ ४ ॥

टीका—तब सब देवता अग्नि को आगे कर शिवजी के पास गए तब पार्वती देवताओं को देख लज्जा करके महादेव को छोड़ अलग जा बैठों, परन्तु मनमें रति की इच्छा बनी रही ॥ ४ ॥

रेतोऽपतत्तदा भूमौ तद् गृहीत्वा हुताशनः ॥
तेन तप्तः पुनः क्षिप्त्वा दिक्षु भूम्यां पृथक्-पृथक् ॥ ५ ॥

टीका—तब महादेव का वीर्य पृथ्वीपर पड़ता भया सो वीर्य अग्नि ने ग्रहण किया. फिर उस वीर्य के तेज करके तप्त हुए अग्नि ने भी चारों दिशों के विषे पृथ्वी में डाल दिया ॥ ५ ॥

तत्र जातो रसःकांते कांताधररसप्रिये ॥
गौरीशाप्त उदीच्यादित्रिदिशास्थो न कार्यकृत् ॥६॥

टीका—हे प्रिये ! वहां पारा उत्पन्न हुआ. सो पारा पार्वती के शाप करके उत्तर, पूर्व, दक्षिण दिशामें स्थित रसादि क्रिया के योग्य नहीं है ॥ ६ ॥

पश्चिमायां तु यज्जातः स रसः सर्वसिसिद्धिदः ॥
एषोत्पत्तिः समाख्याता रसज्ञेऽस्य रसस्य वै ॥७॥

टीका—जो पश्चिम में पैदा हुआ सो सर्व कार्य के योग्य है. हे रस के जानने वाले प्यारी ! यह पारे की उत्पत्ति कही ॥ ७ ॥

वर्णभेदं प्रवक्ष्यामि तं शृणुष्व समाहिता ॥
श्वेतो विप्रो विशालाक्षि रक्तः स्यात्क्षत्रियः प्रिये ॥ ८ ॥ पीतवर्णो रसो वैश्यः श्यामः शूद्रोऽलिकुंतले ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठ एतेषां शोधितः सर्वरोगहृत् ॥ ९ ॥

टीका—अथ वर्ण भेद कहता हूं. सो सावधान होके सुनो. हे विशालनेत्रे, श्वेत पारा ब्राह्मण है. रक्तवर्ण क्षत्रिय है. पीला वैश्य और श्याम शूद्र है. इसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है. शुद्ध हुए से सर्व रोग हरता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ रसे दोषाः ॥ नागो वंगोऽग्निचांचल्यमसह्याग्निविषं मलम् ॥ गिरिश्चैते महादोषा रसोऽशुद्धे वदंति हि ॥ १० ॥

टीका—अथ पारा के स्वभाविक दोष कहते हैं,

नाग १, वंग २, अग्नि में रखने से चंचलता ३, और अग्निको न सहना ४. विप ५, मैल ६, पर्वतका भाग ७, ए सात दोप अशुद्ध पारे में सदा रहने हैं ॥१०॥

अशुद्धो जाड्यतां कुष्ठं दाहं वीर्यप्रणाशनम् ॥
मूर्छां स्फोटं च मृत्युं च क्रमात्कुर्यान्मलैरसः ॥११॥

टीका—अथ दोषों का कार्य । अशुद्ध पारा इतने रोग करता है-नाग से जड़ता १, वंगसे कुष्ठ २, अग्नि की चंचलता से दाह करना है ३, अग्नि की असह्यता से वीर्य नाश करता है ४, विषसे मूर्च्छा ५, मैल से देह में फोड़े ६, पर्वत के भाग से मृत्यु करता है. ७. इति ॥ ११ ॥

अथ तच्छोधनम् ॥ दैरदं निंबुनीरेण दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ऊर्ध्वपातन के यंत्रे वह्निं दत्वा त्रियामकम् ॥ १२ ॥ स्वांगशीते समुद्घाट्य तत्रमूर्ध्वं रसं नयेत् ॥ पुनर्विवस्य निबोर्वा रसैर्यामं विमर्दितः ॥ कंचुकैर्नागवंगाद्यै मुक्तः स्यात्पारदोत्तमः ॥ १३ ॥

टीका—अथ शोधन कहते हैं-हिंगुल को नींबू के रस में एक दिन मर्दन करना. फिर डमरू यन्त्र

में तीन पहर की आँच देना. फिर आप से ठंडे होने पीछे ऊपर के पात्र में लगा पारा ले लेना. फिर नींबू वा नींबू के रस में एक पहर मर्दन करने से नागवंगादिक कांचली से छूटा पारा शुद्ध होता है ॥१२॥१३॥

अथान्यः ॥ रसोनराजिके पिष्ट्वा मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ तत्र सूतं सुसंरुध्यस्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ १४ ॥

टीका—दूसरा प्रकार. लहसन और राई पीस के दो मूसी बनावे. मूसी को घरिया भी कहते हैं, उस मूसी को संपुट में पारे को बन्द करके कांजी में दोलायंत्र करके तीन दिन स्वेदन करे ॥ १४ ॥

ततः कुमारिकानीरैर्मर्दयेद्वासरं रसम् ॥ चित्रकस्वरसैःपश्चाद्वासरं मर्दयेत्ततः ॥१५॥ काकमचीद्रवैर्घस्त्रं वराक्वाथैस्ततो दिनम् ॥ ततस्तेभ्यः समुद्धृत्य रसं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥ १६ ॥

टीका—फिर कुमारी पाठे के रसमें एक दिन खरल करे. फिर एक दिन चित्रक के रसमें खरल करे. फिर एक दिन काकमाची रस में जिसको मकोई

और पीचूड़ी भी कहते हैं फिर एक दिन त्रिफला के काढ़े से खरल करके कांजी से धोवे ॥ १५ ॥१६ ॥

ततः खल्वे विनिक्षिप्य तदर्धं सैंधवान्वितम् ॥
दिनैकं निंबुनीरेण मर्द्दयि वल्लभे ॥ १७ ॥

टीका—हे स्त्रिये, फिर पारासे आधा सैंधव मिला के नीबू के रस युक्त एक दिन खरल करे ॥ १७ ॥

ततः सूतसमाकनेताम् गृहीत्वा नवसादरम् ॥
राजिकां च रसोनं च प्रिये चैतैस्तुपांशु वा ॥ १८ ॥ संमर्द्य च क्रियां कृत्वा शोषयित्वा प्रलेपयेत् ॥ हिंगुना शोषयेत्पश्चादूर्ध्वपानत के न्यसेत् ॥ १६ ॥

टीका—फिर पारे की बराबर नवसागर, राई, लहशुन इनको लेके इनमें मर्दन करके टिकिया बनावे सुखावे. फिर हींग लेपन करै, फिर सुखा के डमरू यन्त्र में धरे ॥ १८ ॥ १६ ॥

तां चक्रिकामधस्थाल्यां पूरयेल्लवणेन हि ॥
अधः स्थालीं ततो मुद्रां दत्त्वा दृढतरां बुधः ॥२०॥

टीका—नीचे की हांड़ी में वह टिकड़ी धरके

और उस हंडी को लवण से भर दे फिर अधस्थाली को दृढ मुद्रा देवे ॥ २० ॥

विशोष्यस्थापयेच्चुल्ल्यामधो वह्निं त्रियामकम् ॥
दत्त्वा तीक्ष्णमुपर्यंबुनिषिंचेत्सुप्रयत्नतः ॥ २१ ॥

टीका—फिर सुखावे. सूखे पीछे चूल्हे पर रखके तीन पहर तीक्ष्ण अग्नि देवे. और बड़े यत्न से ऊपर की हांड़ी जलसे तरकीब के साथ भीगी राखै ॥२१॥

स्वांगशीतं समुद्घाट्य तिर्यक्कृत्वाप्रयत्नतः ॥
अथोर्ध्वभांडसंलग्नं गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ॥२२॥

टीका—स्वांग शीतल भये पीछे तिरछी करके यत्न से खोले. ऊपर की हंड़ी में लगा शुद्ध पारा ले लेवे ॥ २२ ॥

पश्चाद्बलप्रकर्षाय स्वेदयेद्दोलयंत्रके ॥
सिंधूत्थचूर्णगर्भस्थं वस्त्रे बध्वोत्तमोरसः ॥ २३ ॥

टीका—फिर सैंधव के चूर्ण के बीच में रख के वस्त्र में बांध के दोला यंत्र में केवल जलसे स्वेदन करे. तो पारा बलवान् होता है ॥ ॥ २३ ॥

अथ रस जारणम् ॥ तत्रासामान्यतः

षड्सगुणबलिजारणम् ॥ ससूतमल्पकं भांडं
बालुकायन्त्रके न्यसेत् ॥ षड्गुणं गंधकं
तत्र क्षिपेदल्पाल्पकं शनैः ॥ २४ ॥

टीका—अथ रसजारण-तहां सामान्य से छ गुना गंधक जारण कहते हैं. छोटे मृत्तिका के पात्र में पारा रखके बालुका यन्त्रमें धरै. फिर छ गुणा गंधक थोड़ा ऊपर से डारता जावे ॥ २४ ॥

द्रवीभूतबलिं ज्ञात्वा शीघ्रमुत्तार्ययत्नतः ॥
स्वांगशीते दृढे गंधे स्फोटयित्वा नयेद्रसम् ॥२५॥

टीका—जब गंधक गलजावे तब धीरे से उतार लेवे. जब ठंड़ा होवे तब गंधक को फोर के शुद्ध पारा निकाल लेवे ॥ २५ ॥

सर्वरोगहरः सूतो हरः पापहरो यथा ॥
पतिप्राणप्रिये कांते यत्ते हरिहरार्चने ॥ २६ ॥
(यत्ता सावधाना) ॥

टीका—हे पति के प्राण के सदृश प्रिये, विष्णु और शंकर के पूजन को सावधान रहने वाली, पारा सर्व रोगों को हरने वाला है. जैसे महादेव सर्व पाप हरने वाला है ॥ २६ ॥

अथ षड्गुणगंधकजारणफलम् ॥ समांशे गंधके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः । गंधके द्विगुणे जीर्णे सर्वकुष्ठनिषूदनः ॥ २७ ॥

टीका—अथ छ गुण गंधक जारने का फल. पारे के समान गंधक जीर्ण होने से शुद्ध से भी सौ गुणा उत्तम पारा होता है, दूना गंधक जीर्ण होने से कुष्ठ नाशक होता है ॥ २७ ॥

गंधके त्रिगुणे जीर्णे जाड्यहा रस उत्तमः ॥
जीर्णे चतुर्गुणे गंधे वलीपलितजिद्रसः ॥ २८ ॥

टीका—त्रिगुण गंधक जीर्ण होने से जड़ता को हरता है. चौगुना जीर्ण होने से वलीपलित नाशक होता है ॥ २८ ॥

गंधे बाणगुणे जीर्णे क्षयक्षयकरः शिवः ॥
गंधे रसगुणे जीर्णे सर्वातकप्रणाशनः ॥ २९ ॥

टीका—पंचगुण जीर्ण होने से क्षयरोग हारक होता है, छ गुणा गंधक जीर्ण होने से सर्व रोग हारक होता है ॥ २९ ॥

टीका—इन करके मर्दन किया पारा छिन्नपक्ष अर्थात् पंख रहित होता है, और भूंखा भी होता है, तब और धातुओं को खाता है. ॥ ३७ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ द्वौ क्षारौ त्रिकटुश्चापि राजिका नवसादरम् ॥ हुताशनश्चशिग्रुश्च रसोनः पटुपंचकम् ॥ ३८ ॥

टीका—अथ दूसरा प्रकार–साजीखार, जवाखार, सूंठ, मिरच, पिप्पल, जिसको सेगट भी कहते हैं, लहशुन, विडलोन, सांभरलोन, समुद्रलोन, सैंधवलोन, संचललोन ॥ ३८ ॥

रसात्समांशकैरेभिर्मर्दयेन्निंबुकद्रवैः ॥
जंबीरस्वरसैर्वापिकांजिकैर्वा प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

टीका—उनको पारा के समभाग लेके नींबू का रस वा जंभीरी का रस वा कांजी से बड़े यत्न के साथ ॥ ३९ ॥

तुषवह्निस्थके खल्वे अहोरात्रैस्त्रिभिर्भवेत् ॥
बुभुक्षितो रसो बाले सर्वधातुचरो भवेत् ॥४०॥

टीका—इनके संग पारा मिला के धानके तुष-

की अग्नि पर खरल रखके तीन दिन मर्दन करे तो पारा भूखा होता है और सर्व धातुको खाता है ॥४०॥

अथ मारणविधिः गंधकं नवसारं च सौराष्ट्रीं धूमसारकम् ॥ रसं भागैः समान् सर्वान्याममम्ले मर्दयेत् ॥ ४१ ॥ मृद्वस्त्रवेष्टितायां तत्काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ वक्रे कूप्या दृढां मुद्रां दत्त्वा सम्यग्विशोषयेत् ॥ ४२ ॥

टीका—अथ मारण–गंधक, नवसादर, सोरठी माटी, जो सोरठी माटी न मिले तो फटकरी, घरमें का धुवां और पारा ए समभाग ले एक प्रहर कोई भी खटाई से मर्दन करै पीछे कपरड़ मिट्टी की हुई शीशी में भरे, फिर शीशी के मुख में दृढ मुद्रा देके सुखावे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अधश्छिद्रान्विते भांडे पंचास्ये मृन्मये न्यसेत् ॥ कूपिकां वालुकापूरैः पूरयेदागलं च ताम् ॥ ४३ पंचास्ये विस्तृतमुखे चुल्ल्यां संन्यस्य शनकैरग्निं दत्त्वाब्धियामकम् ॥ पश्चाद्वह्निं वर्धयेद्वह्निं क्रमात्सम्यक् प्रय-

त्नतः ॥ ४४ ॥ एवं द्वादशांभिर्यामैः पारदो भस्मतां व्रजेत् ॥ स्वांगशीतां हितां कूपीं स्फोटयेन्मधुरस्वरे ॥ ४५ ॥

टीका—फिर एक कूंडा गहिरा मट्टी का ले, उसके नीचे छिद्र करे, उसपर शीशी रखके शीशी के गले पर्यंत बालू रेत भरे ॥ ४३ ॥

टीका—हे मधुर स्वरवाली ! फिर धीरे से चूल्हे पर धरे फिर चार पहर की मंद आंच देवे फिर तेज आंच क्रम से वढ़ावे, ऐसे बारह १२ पहर की आंच से पारा भस्म होता है, फिर आपसे शीतल हुए पर शीशी को फोड़ै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

ऊर्ध्वलग्नं त्यजेद्गंधमधस्तं पारदं मृतम् ॥
गृहीत्वा सर्वकार्येषु योजयेदामयापहम् ॥ ४६ ॥

टीका—शीशी में ऊर्ध्व लगा गंधक छोड़ देवे और नीचे मरा पारा लेलेवे सो सर्व कार्य करने वाला है और रोगनाशक है ॥ ४६ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ काष्ठोदुंबरिकादुग्धैर्मर्दये त्पारदं ततः ॥ अपामार्गस्य बीजानां मूषागुग्मे विमुद्रयेत् ॥ ॥ ४७ ।

टीका—अथ तीसरा प्रकार–पारा को कटूमरके दूध में मर्दन करके गोला बना फिर अपामार्ग के बीजोंके दो मूसे बनावे जिसमें पारेका गोला धरे।४७।

द्रोणपुष्पीप्रसूनानां विडंगमरिमेदयोः ॥
कल्कैर्मूषां विलिप्यैव परितोऽङ्गुलमात्रकम् ॥४८॥

टीका—फिर द्रोणपुष्पी जो गूमा उसके पुष्प और बायविडंग और खैर इनकी लुगुदी मूसा के चौतरफ एक अंगुल फिरतो लगावै ॥ ४८ ॥

तद्गोलं मृन्मये न्यस्य मूषायुग्मे विमुद्रयेत् ॥
मृद्वस्त्रैः शोष्यनागाह्व पाचयेद्धि पुटेरसम् ॥
भस्मीभूतं रसं नेयं योजयेत्सर्वकर्मसु ॥४९॥

टीका—फिर उसको माटी के संपुट में रखके कपरौटी कर सुखा के गजपुट आंच दे तो पारा भस्म सर्वकार्ययोग्य होवे ॥ ४९ ॥

अथान्यः प्रकारः ॥ मलयूदुग्धसंमिश्रं रसराजं विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धमिश्रहिंगोश्च मूषायुग्मे विमुद्रयेत् ॥ ५० ॥

टीका—अथ चौथा प्रकार–पारे को कटूमरी के

दूध में मर्दन करे और उसी के दूधमें हींग घाट के दो मूसा बनावे उसमें यह पारा भरे ॥ ५० ॥

तां मूषां मृन्मये रुद्ध्वा मूषायुग्मे तु वेष्टयेत् मृद्वस्त्रैः सप्तभिः पश्चाच्छोषयेदातपे भृशम् ॥ ५१ ॥ पुटेन्मृदुपुटे यत्नाद्रसो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ नवयौवनसौंदर्य भूषणे यद्विरेक्षणे ॥ ५२ ॥

टीका—फिर उस मूषा को मट्टी के संपुट में बन्द करके सात कपरौटी करे. फिर सुखाके हलकी सी पुट देवे तो भस्म होवे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथान्यः ॥ नागवल्लीरसैः पिष्टः कर्कोटीकंदगर्भगः ॥ मृन्मूषासंपुटे पक्को रसो यात्येव भस्मताम् ॥ ५३ ॥

टीका—अथ पांचवां प्रकार-नाग वेल के (पान के) रसमें खरल करके बांझ ककोड़ी के मूलमें संपुट करके पुट दे तो भस्म हो ॥ ५३ ॥

अथ गुणः ॥ रसो रसरससैर्युक्तः शोधितो भस्मासात्कृतः ॥ त्रिदोषशमनः कामवर्धनः सर्वरोगहृत् ॥ ५४ ॥

टीका—अथ साधारणगुण. पारा छ रस करके युक्त है. सो पारा शुद्ध भस्म किया हुआ त्रिदोष को शांत करता है कामदेव को बढ़ाता है और सब रोगों को हरता है ॥ ५४ ॥

कामिनीदर्पदलनः सुधास्पर्धी सुवर्णकृत् ॥
चक्षुष्यः स्मृतिदो वल्योरूपदः कृमिकुष्ठहा ॥५५॥

टीका—कामिनी स्त्री के दर्प को दूर करता है. अमृत तुल्य है सुवर्ण कारक है. नेत्र निर्मल करता है. स्मृति और बल और रूपको देनेवाला है. कृमि और कुष्ट को नाश करता है ॥ ५५ ॥

जरामरणजाड्यघ्नो योगवाहो वरांगने ॥
दहत्यग्निस्तृणानीव धातु स्थानामयान्रसः ॥५६॥

टीका—जरा अवस्था, अपमृत्यु और जड़ता इनका नाशक है और योगवाही है जैसे अनुपान से देवे वैसाही गुण करे, जैसे अग्नि घासको जलाता है वैसे धातुगत रोगों को पारा जलाता है ॥ ५६ ॥

अथ दोषाः पूर्वमेवोक्ताः तच्छांतिः कथ्यते ॥
गवां दुग्धयुतं पीत्वा गंधकं दिनसप्तकम् ॥
पारदस्य विकारेण मुक्तः सुखमवाप्नुयात् ॥५७॥

टीका—दोष तो पहले कह आए हैं अब शांति कहते हैं, गौके दूध में सात दिन गंधक पीने से पारदविकार शांति होता है ॥ ५७ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजैमानमारभ्यचतुर्गुंजा-
वधिं नरः ॥ रसराजं प्रिये युक्त्या
भक्षयेनुदपानतः ॥ ५८ ॥

टीका—अथ अनुपान–एक रत्ती से लेके चार रत्तीतक पारा सेवन बलाबल देखके करे ॥ ५८ ॥

घृतवल्लिजचूर्णेन मगधामधुनाऽथवा ॥
मधूच्छिष्टघृताभ्यां वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥५९॥

टीका–कालीमिर्च और घृतसंग अथवामधु पिप्पलीसंग अथवा घृत मधुसंग सर्व रोगमें देवे ॥५९॥

पित्ते ज्वर सेतायुक्तं पिप्पल्याथ समीरणे ॥
श्लेष्मण्यार्द्रकजैर्नीरैर्ज्वरेजंबीरजेरसैः ॥ ६० ॥

टीका—पित्त में दूर शक्कर संग, वातरोग में पीपर साथ, कफ में आदे के रस युक्त, ज्वर में जंभीरी के रस में देना ॥ ६० ॥

मधुना रक्तविकृतौदध्नातीसारकेगदे ॥
समतोयश्रृतं दुग्धं पीत्वापश्चात्सितायुतम् ॥६१॥

टीका—रक्त विकार में मधु साथ, अतीसार में दही साथ लेके ऊपर से पथ्य में यह दूध पानी मिला के औटे, और जब पानी सूख के दूध रहे तिसमें शक्कर डाल के पीवे ॥ ६१ ॥

रक्तातीसारके देयं मेघनादभवे रसैः ॥ प्रति-श्याये कफे दुष्टे गुडसर्पिमरीचकैः ॥ ६२ ॥ पथ्येऽन्नं सदधि स्निग्धं कवोष्णं भोजने हि-तम् ॥ हितामालिंगनं तेस्याद्यथामे मदनज्वरे ६३

टीका—रक्तातीसार में चौलाई के रस में (चौलाई को तान्दुलिया भी कहते हैं) जुखाम में और कफ बिगड़े में गुड़ मिरच घृतसाथ लेके सचिक्कण दही के साथ गरमा गरम भोजन करे तो जैसा मदन की पीड़ा में आलिंगन वैसा हित है. ॥६२॥६३॥

वीर्यवृद्धौ तथा स्तंभे माषकूष्मांडयष्टिजैः ॥ चूर्णैर्दुग्धसितायुक्तैर्मधुसर्पियुतैस्तु वा ॥६४॥

टीका—वीर्यवृद्धि तथा वीर्य बंधन के वास्ते उड़द, भूरा कुम्हड़ा, जेठी मधु जिसको मुलेठी कहते हैं, इनके चूर्ण में पारा भस्म लेके ऊपर से दूध शक्कर पिये अथवा मधु घृत में लेवे ॥ ६४ ॥

तृतीयके ज्वरे पित्ते भ्रमे मधुसितायुतम् ॥
जग्ध्वा मेघमृतारक्तधान्या कजलजं-
पिबेत् ॥ ६५ ॥ क्वाथं कमलभू कांता-
तुल्यशीले मनोहरे ॥ सुखी स्यात्ते रता-
वास्यचुंबनेन यथा त्वहम् ॥ ६६ ॥ रक्तं
रक्तचंदनम् ॥ जलमुशीरम् ॥

टीका—तृतीय ज्वर, पित्त, भ्रम इन रोगों में मधु शक्कर युक्त लेवे फिर तुरतही नागरमोथा, गिलोय, रक्त चन्दन, धनिया, उशीर जिसको खस भी कहते हैं इनका काढ़ा पिवै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रक्तपित्ते कफे कासे श्वासे क्वाथेन सेवयेत् ॥
द्राक्षावासाशिवानां भोः पथ्ययुक्तोवरांगने ॥६७॥

टीका—हे सुन्दर अंगोंवाली रक्त पित्त, कफ, श्वास, कास इनमें द्राक्ष और अडूसा, इनके काढ़े में पथ्य करके लेवे ॥ ६७ ॥

मेदोगदे शालिमंडैर्वांबुमाक्षिकसंयुतम् ॥
भजेद्गजास्यतुल्योऽपि स्थूलः कृशतरो भवेत् ॥६८॥

टीका—मेद रोग में चावल के मांड में अथवा

मधु पानी के साथ लेवे तो गजानन के सरीखा स्थूल भी कृश होजावे ॥ ६८ ॥

नष्ट पुष्पे रक्तगुल्मे शिवशास्त्राभिधे गदे ॥ क्काथे कृष्णतिलोत्थे तु भार्ङ्गीत्रिकटु-हिंगुजैः ॥ ६९ ॥ चूर्णैस्तु सगुडैर्युक्तै रस-भूतिर्निषेविता ॥ सुखदा त्वं यथा रात्रौ प्रिये शृंगारसंयुता ॥ ७० ॥

टीका—जिस स्त्रीका रज नष्ट हुआ हो सो और रक्तगुल्मवाली और शूलरोग में भारंगी, सोंठ, मिरच, पीपरी, हींग, गुड़, इनके साथ लेके ऊपर से काले तिलों का काढ़ा पिये तो हे प्रिये! जैसी शृंगारसे युक्त रातमें सुख देने वाली तुम हो वैसी होगी और शीघ्र दुःख जावे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ पथ्यम् ॥ मुद्गयूषघृतं दुग्धं शाल्यन्नं सैंधवं तथा नागरं पद्ममूलं च मुस्तकं गिरिमल्लिका ॥७१॥ शाकं पौनर्नवं श्रेष्ठं मेघनादं च वास्तुकम् ॥ अभ्यंगं सुखदं स्नानं कोष्णतोयेन नित्यशः ॥ ७२ ॥

टीका—अथ पारा से सेवन में पथ्य-मूँग का जूष, घृत, दुग्ध, चावल का भात, सैंधव लवण, सोंठ, कमल की जड़, मोथा, गिरमर, पुनर्नवा का शाक, चौलाई का शाक, बथुवा का शाक, तैल मर्दन, नित्य गरम जल से स्नान ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

रूपयौवनसंपन्नां स्वानुकूलां भजेत्प्रियाम् ॥
तेन बुद्धिर्बलं कांतिर्वर्धते रससेविनः ॥ ७३ ॥

टीका—और रूप यौवन युक्त अपनी प्यारी स्त्री से संग करे तो पारा सेवने वाले की बुद्धि, बल, कांति बढ़ाता है ॥ ७३ ॥

अथापथ्यम् ॥ कालिंगं कर्कटीं चैव कूष्मांडं कारवेल्लकम् ॥ कुसुंभाशाकं ककोंटीं कदलीं काकमाचिकाम् ॥ ७४ ॥

टीका—अथापथ्य-तरबूज, जिसको कलींदा भी कहते हैं, काकड़ी, कूष्मांड, करेला, कुसुंभ का शाक, ककोड़ा, केला कंद काकमाची जिसे मकोय भी कहते हैं ॥ ७४ ॥

ककाराष्टकमित्येतद्वर्जयेद्रससेवकः ॥
जराव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतंसुखी ॥७५॥

टीका—ए ८ ककारादि वस्तु रस सेवक त्यागे तो जरा व्याधि से मुक्त होके सुख करके सौ वर्ष जीवै ॥ ७५ ॥

अथ रसकर्पूरविधिः ॥ संक्षेपाद्धि रसं पूर्वं शोधयेच्छुद्धमानसे ॥ पश्चाच्छुद्धेन प्रत्येकं तुल्यं कृत्वा रसेन हि ॥ ७६ ॥

टीका—अथ रस कर्पूरविधि-पहले संक्षेप से पारे को शुद्ध करे फिर प्रत्येक द्रव्य जो अगाड़ो लिखी हैं सो पारे की बराबर लेना ॥ ७६ ॥

गैरिकं खटिका[1]मिष्टिं[2] सौराष्ट्रीं सैंधवं तथा ॥
टंकणं क्षारलवणं मृत्स्ना[3]चूर्णंसुसूक्ष्मकम् ॥७७॥

टीका—गेरू, खड़ी, ईंट, सोरठी, मट्टी अथवा फटकरी, सैंधव लवण, टंकण और खारी लोन, मुलतानी मट्टी इनका बारीक चूरण करे ॥ ७७ ॥

एतच्चूर्णान्वितं सूतं यामैकं मर्दयेत्ततः ॥
ऊर्ध्वपातनकयंत्रे वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥७८॥

१, खटिका (खरी)। २, इष्टिम् (ईंट) इति प्रसिद्धम्।
३, मृत्स्ना (मुलतानी मट्टीति लोके प्रसिद्ध)।

टीका—फिर इस चूर्ण के संग एक प्रहर भर पारे को मर्दन करे. फिर ऊर्ध्व पातन यन्त्र में मन्द मन्द आंच देवे ॥ ७८ ॥

अहोरात्रैश्चतुर्भिश्च ततो वै स्वांगशीतलम् ॥
उद्घाट्योर्ध्वविलग्नं वैरसं कर्पूरसंज्ञिकम् ॥७९॥

टीका—चार रात्रि और दिन आंच देवे. फिर स्वयं शीतल भये पीछे खोल के ऊर्ध्व पात्र में लगा रस कपूर ले लेवे ॥ ७९ ॥

गृहीत्वा सर्वरोगघ्नं बलबुद्धिविवर्धनम् ॥
वृंताकशतकैः शुद्धं भक्षितं गुणवत्तरम् ॥८०॥

टीका—वह रसकपूर सर्व रोग का हरने वाला है और बल बुद्धि का बढ़ाने वाला है. सौ बैंगन में शुद्ध किया बहुत गुण देता है. ऐसे करे कि, बैंगन के बीच में रसकपूर धरके थोड़ीसी अग्निमें पचावै जब बैंगन पक जावे तब निकाल के दूसरे बैंगन में धरे. ऐसे सौ १०० बैंगन में शोधै ॥ ८० ॥

कस्तूरीकाचंदनदेवपुष्पैःसकुंकुमैरब्जविलोचनेयः॥
कर्पूरकं पारदसंभवं नानिषेवयन्संजते फिरंगम्॥८१॥

टीका—हे कमलनयने! शुद्ध रसकपूर, कस्तूरी चन्दन, लवंग, केसर, समभाग मिलाके एक रत्ती सेवन करे तो फिरंगरोग जावे ॥ ८१ ॥

सोपद्रवं विंदति चाग्निदीप्तिं वीर्यं वलं पुष्टिमदीर्घकालात् ॥ स्त्रीणां समूहं रमयेत्प्रिये त्वं मया रसस्वाद्य निषेवितं मे ॥ ८२ ॥

टीका—और फिरंग के उपद्रव भी जावे, भूँख बढावे, वीर्यबलपुष्टि करे, स्त्रीके समूह से रमे ॥ ८२ ॥

अथ दोषाः ॥ सेवतोऽविधिना कुष्ठं संधिवातं कफादिकम् ॥ रसकर्पूरकः कुर्यात्तस्माद्यत्नेन सेवयेत् ॥ ८३ ॥

टीका—अथ दोष-जो विधिहीन रसकपूर सेवन करे तो कुष्ठ, संधिशोथ, कफवात पैदा करे, इस वास्ते यत्न से सेवन करे ॥ ८३ ॥

अथ तच्छांतिः महिषीशकृतो नीरं धान्याकं वा सितायुतम् ॥ पिबेन्नीरेण मुक्तः स्याद्रसकर्पूरजैर्गदैः ॥ ८४ ॥

टीका—अथ शांति–भैंस के गोवर का पानी अथवा धनिया और शक्कर पानी से पिये तो रस कपूर विकार जावे ॥ ८४ ॥

अथ रससिंदूरविधिः शुद्धं गंधं रसाच्छु-द्धादर्धभागं विमिश्रयेत् ॥ तयोः कज्जलि-कां कूप्यां काचमय्यां विनिक्षिपेत् ॥८५॥

टीका—अथ रस सिंदूर विधि-शुद्ध पारे से आधा शुद्ध गंधक मिला के कजली करके आतशी काँच की शीशी में भरै ॥ ८५ ॥

मृद्वस्त्रैः कुट्टितैः कूपीं लेपयेच्छोपयेत्ततः ॥
स्थापयेद्वालुकायंत्रे वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥८६॥

टीका—फिर शीशी के ऊपर मृत्तिका और वस्त्र खूब कूट के लेप करके सुखावे, फिर वालू का यन्त्र में मंद मंद आँच देवे ॥ ८६ ॥

चतुर्घस्त्रावधिं पश्चात्स्वांगशीतां हि कूपिकाम् ॥
स्फोटयेदूर्ध्वसंलग्नं सिंदूराहं रसं नयेत् ॥ ८७ ॥

टीका—ऐसे चार दिन रात निरंतर आँच देवे फिर आप से ठंडे होने पर सीसी को फोड़के उसके ऊपर के भागमें लगा रससिंदूर ले लेवे ॥ ८७ ॥

अथान्यः उत्तमः प्रकारः ॥ पारदं गंधकं
तुल्यं गंधार्धं नवसादरम् ॥ कज्जलीं चित्र-
कक्काथैस्तथोन्मत्तदलांबुना ॥ ८८ ॥ कुमारी-
स्वरसैर्घस्रं पृथक्कृत्वा विमर्दयेत् ॥ काच-
कूप्यां विनिस्थाप्य लेपयेत्कूपिकां प्रिये ॥८९॥

टीका—अथ दूसरी उत्तम विधि-पारा, गंधक सम भाग और गंधक से आधा नवसादर इनकी कज्जली करे. तिस कज्जली को चित्रक के काढ़े में और धतूरे के पत्रके रसमें और घी कुमारि के रसमें न्यारा न्यारा एक एक दिन मर्दन करे. फिर काँच की शीशी में भरके ऊपर लेप चढ़ावै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

तद्विधानं प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वं समाहिता ॥
खटिकां लोहकिट्टं च चूर्णयेद्वस्त्रगालितम् ॥९०॥

टीका—लेपन विधान कहते हैं सो तुम सुनो. खड़ी और लोह का कीट सूक्ष्म चूरण कर कपड़े में छानै ॥ ९० ॥

लोहकिट्टचतुर्थांशं चूर्णं गोधूमसंभवम् ॥
दिनैकं मर्दयेत्सर्वं सवस्त्रं लेपयेच्च ताम् ॥ ९१ ॥

टीका—और लोह कीट का चौथा भाग गेहूं का आटा मिला के एक दिन मर्दन करै फिर वस्त्रमें लगा के शीशी में लेप लगावे ॥ ६१ ॥

कूपिकां शोषयेत्पश्चाल्लेपयेच्छोषयेत्ततः ॥
सप्तवारं प्रलिप्यैवं शोषयेत्तां निधापयेत् ॥६२॥

टीका—फिर शीशी सुखा के फिर लगावे. ऐसे सात कपरौटी करे और सुखावे ॥ ६२ ॥

वालुकायंत्रके दद्यादग्निं यामचतुष्टयम् ॥
स्वांगशीतां तु संस्फोट्यचोर्ध्वलग्नं रसं नयेत् ॥६३॥

टीका—फिर वालूका यन्त्र में चार प्रहर की अग्नि देवे, फिर आपसे शीतल भए पीछे शीशी को फोड़ के ऊपर लगा रस ले लेवे ॥ ६३ ॥

सुरक्तं रससिंदूरं ख्यातं वैद्यवरैः प्रियेः ॥
अनुपानयुतं दत्तं रोगजालविनाशनम् ॥ ६४ ॥

टीका—सुन्दर लालवरण लोक प्रसिद्ध रस सिंदूर अनुपानयुक्त सेवन करने से रोग समूह को नाश कारक है ॥ ६४ ॥

अथ गुणाः ॥ हरति च रससिंदूरं कासश्वा-

सामिनमाद्यमेहगणान् ॥ रक्तविकारं कृच्छ्रं ज्वरादिरोगान्यथानुपानयुतम् ॥ ६५ ॥

टीका—अथ गुण-कास, श्वास, मंदाग्नि, प्रमेह, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र और भी ज्वरादिक रोगों को अनुपान से युक्त रससिंदूर हरता है ॥ ६५ ॥

अथ दोषस्तच्छांतिश्च ॥ रससिंदूरमशुद्धाद्रसाद्धि जातं पारदवद्रोगान् ॥ कुर्याच्चेत्तच्छांत्यै घृतमरिचरजः पिवेत्सप्तदिनम् ॥६६॥

टीका—अथ दोष और दोषकी शांति-जो अशुद्ध पारे से रससिंदूर बनता है सो पारा की तरह रोग करता है. उसको शान्ति के वास्ते कालीमिर्च और घृत सात दिन पीवे ॥ ६६ ॥

अथानुपानम् ॥ गुंजादिमानमारभ्यचतुर्गुंजावधिं प्रिये ॥ दद्यात्कालवयोवह्निदेशान् दृष्ट्वामयं बलम् ॥ ६७ ॥

टीका—अथ अनुपान-एक रत्ती से चार रत्ती तक रससिंदूर काल, अवस्था अग्नि. देश, रोग, बल, देख के देना ॥ ६७ ॥

पिप्पलीमधुसंयुक्तं वातमेहनिवारणम् ॥
सितोपलावरायुक्तं पित्तमेहंवरांगने ॥ ९८ ॥

टीका—हे वरांगने ! वात प्रमेहमें मधुपिप्पल
साथ पित्त प्रमेह में त्रिफलाचूर्ण और मिश्र
साथ देना ॥ ९८ ॥

भार्ङ्गीत्र्यूषणमाक्षीकः कसनश्वासशूलनुत् ॥
सितारात्रिसमायुक्तं रक्तदोषंविनाशयेत् ॥९९॥

टीका—भारंगी, सूंठ, मिर्च, पीपल, मधु सं
कास, श्वास, शूलरोग में और रक्तदोष में हलद
शक्कर संयुक्त ॥ ९९ ॥

कामलापांडुमंदाग्नीन्वरात्र्यूषणयुग्जयेत् ॥
यथा विष्णुः श्रियायुक्तोहृदिस्थो भक्त-
पातकान् ॥ १०० ॥

टीका—जैसा हृदय में रहने वाला लक्ष्मी
साथ विष्णु भक्तों के पातकों को हरता है वैस
कामला, पांडु, मंदाग्नि इन रोगों को त्रिफला औ
त्रिकटु के चूर्ण में लेवे तो हरता है ॥ १०० ॥

हृद्रोगं बद्धकोष्ठं च वह्निमांद्यादिकान् गदान् ॥
जयेच्चित्रकपांचालीशिवासौवर्चलान्वितम् ॥१०

टीका—हृदयरोग, बद्धकोष्ठ, मंदाग्नि इनमें चित्रक, पीपल, हरड़ संचरलवण संग देना ॥१०१॥

शिलाजतुसितैलाभिर्मूत्रकृच्छ्रापनुद्भवेत् ॥
सौवर्चल वरायुक्तं रेचयेन्नवयौवने ॥ १०२ ॥

टीका-हे तरुणि ! शिलाजतु, शक्कर, इलायची इनसंग मूत्रकृच्छ्र रोगमें देवे, त्रिफला और संचल लवण संग लेने से रेचन करे ॥ १०२ ॥

जातीपत्रीलवंगाफू-भंगापिप्पलिकुंकुमैः ॥
कर्पूरेण च संयुक्तं धातुवृद्धिकरं परम् ॥१०३॥

टीका—धातुवृद्धि के वास्ते जायपत्री, लवंग, अफ़ीम, भाग, पीपली, केसर और कपूर साथ लेवे १०३

लवंगरुच्यकशिवायुक्तं सर्वज्वरापहम् ॥
प्रिये भंगाजमोदाभ्यां छर्दिरोगप्रणाशनम् ॥१०४॥

टीका—सर्व ज्वर में लवंग, संचल, हरडयुक्त, छर्दिरोगमें भांग और अजमोदासंग देना ॥ १०४ ॥

लवंगकुंकुमयुते नागवल्लीदलाद्भवे ॥
वीटकेवापि कूष्मांड चूर्णं स्याद्धातुवर्धनम् ॥१०५॥

टीका—धातु वृद्धि के वास्ते पान के बीड़े में

रससिंदूर, लवंग, केसर देवे, वा कूष्मांड चूर्ण साथ देवे ॥ १०५ ॥

गुडपर्पटसंयुक्तं कृमीन् कौष्ठगतान्जयेत् ॥
लवंगभंगाफूकैश्च सर्वातीसारनुत् प्रिये ॥ १०६ ॥

टीका—पेट के कीड़े जाने के वास्ते पित्तपापड़ा, और गुड़ में दे. सर्व अतिसार में लवंग, भांग, अफ़ीम में देना ॥ १०६ ॥

दीप्यसौवर्चलोपेतं वह्निमांद्यापहं परम् ॥
पौष्टिकेऽप्यमृतात्सत्वसंयुतंपुष्टिकारकम् ॥ १०७ ॥

टीका—अग्निमांद्यमें अजमोद और संचललोन साथ दे. पुष्टि के गिलोय के सत्व में देवे ॥ १०७ ॥

वातं माक्षिकपांचालीचूर्णयुक्तं विनिर्जयेत् ॥
सितोपलायुतं पित्तं जयेदंबुजलोचने ॥१०८॥

टीका—हे कमलनयने ! वात रोग में पीपली मधु संग दे पित्तमें मिश्री संग दे ॥ १०८ ॥

त्रिकट्वाग्नियुतं हन्यात्कफरोगं सुदारुणम् ॥
अन्यान् रोगान् जयेद्युक्त्या यथायोग्यानुपाकै१०९

टीका—कफ रोगमें सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक संग और रोगोंको अपनी बुद्धिसे अनुपानयुक्त करे१०९

पथ्यं पारदवत्सर्वं सेवयेद्धै हरिं स्मरन् ॥
नवकंजविशालाक्षि प्रिये पीनपयोधरे ॥ ११० ॥

टीका—इसका पथ्य पाराके तुल्य है और इसको हरिका स्मरण करते करते सेवन करे ॥ ११० ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां रसानुपानकथने तृतीया वीचिः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी टीकाया नौकाख्यायां तृतीयकोष्टक. ॥ ३ ॥

अथ गंधकः । तत्र भेदाः ॥ श्वेतोरक्तस्तथा पीतः कृष्णो गंधश्चतुर्विधः ॥ क्रमाद्विप्रादिकैर्वर्णैः श्वेतः स्याद्व्रणलेपने ॥ १ ॥

टीका—अथ गंधकविधि—तत्र गंधक भेद. श्वेत, रक्त. पीत और कृष्ण गंधक चार प्रकार का है. श्वेत ब्राह्मण, रक्त क्षत्रिय. पीत वैश्य, कृष्ण शूद्र है. तहां श्वेत घाव में लेपने योग्य है ॥ १ ॥

रक्तः स्वर्णक्रियासूक्तः पीतवर्णोरसायने ॥
कृष्णः सर्वक्रियासूक्तोजनैरप्राप्य एव सः ॥ २ ॥

टीका—रक्त स्वर्ण क्रिया में, पीत रसायन में. रसायन उनको कहते हैं, जिससें बुद्धिबल बढ़े और जराव्याधिका नाश हो. कृष्ण सर्वकार्ययोग्य है परन्तु अप्राप्य है ॥ २ ॥

अथ शुद्धिः ॥ लोहपात्रे विनिक्षिप्य गंधकं गोघृतं समम् ॥ द्रुते गंधे तु गोक्षीरे क्षिप्तः शुध्यति गंधकः ॥ ३ ॥

टीका—अथ गंधक शुद्धि.—लोहके पात्रमें गंधक और घृत समभाग मिलाके मंद अग्निसे गरम करे जब पतला हो गोदुग्धमें बुझावे तो शुद्ध हो ॥३॥

अथानुपानम् ॥ माषकाद्दशमाषांतं शुद्धं गंधं निषेवयेत् ॥ शिरोव्रणे शिरः शूले लेपयेद्यवकांजिकैः ॥ ४ ॥

टीका—एक मासे से दशमासे तक शुद्ध गंधक सेवन करना चाहिये. मस्तक में जब व्रण हो वा शूल हो तो कांजीसंग लेपन करना ॥ ४ ॥

नेत्ररोगं वरायुक्तो गोघृतेन व्रणं जयेत् ॥ मधुनाज्येन वा हन्यादंजितः शुक्रमाक्षिकम् ॥ ५ ॥ आक्षिकं शुक्रं (फूली) ॥

टीका—नेत्र रोग में त्रिफला संग खावे, व्रण रोगमें घृतयुक्त ले, नेत्रकी फूलीपर मधुमें अथवा घृतमें अंजन करे ॥ ५ ॥

सवल्लिजगवाज्येन पिप्पलीगोघृतेन वा ॥
जयेत्कासं तथा श्वासं बृहतीफलसर्पिषा ॥ ६ ॥

टीका—कासमें गोघृत मिर्चसंग, अथवा गोघृत पीपलसंग, श्वासमें भटकटैयाका फल जिसको भूरिंगणी भी कहते हैं उसके फल और घृतसाथदे ॥६॥

मगधामधुसंयुक्तः स्वरभंगं जयेदयम् ॥
पार्श्वशूलं तथानागवल्लिनीरेण गंधकः ॥ ७ ॥

टीका—स्वरभंगमें मधु पिप्पली साथ पार्श्वशूल अर्थात् पशुलीकी शूलमें नागवलिके रसयुक्त देवे॥७॥

विषूचीं निंबुनीरेण प्रमेहं सगुडो जयेत् ॥
धात्रीफलरजोयुक्तो गंधकोऽयमजीर्णहा ॥ ८ ॥

टीका—विषूचिकारोग में नींबू के रसमें प्रमेह में गुड़साथ, अजीर्ण में आमला के चूर्णसाथ देवे ॥८॥

पामादींस्तिलतैलेन ग्रहणीं विश्वसर्पिषा ॥
भक्षितो निंबपंचाङ्गैः कुष्ठं कष्टतरं दहेत् ॥ ९ ॥

टीका—पामा अर्थात् खुजली में तिलके तेलमें, संग्रहणी में सोंठि घृतसाथ, कुष्ठ रोगमें नींबू के पंचांग के साथ देवे ॥ ॥ ६ ॥

वातरोगान् जयेद्वंध: साज्येन स्वर सांबुना ॥
पित्तरोगान् गवाज्येन गुडविश्वयुतः कफम् ॥१०॥

टीका—वात रोग में तुलसी का रस और घृत से, पित्त रोग में गोघृतसाथ, कफमें गुड़ सोंठ साथ देवे ॥ १० ॥

वाज्यजामूत्रगोक्षीरघृतशुंठियुतं वलिम् ॥
टंकमारभ्य कर्पातमब्दैकं भक्षयेद्धि यः ॥ ११ ॥

टीका—घोड़े का और बकरी का मूत्र, गौका दूध, घृत, सोंठि इनके साथ एक टंक से लेके तोला पर्यंत एक वर्ष सेवन करै ॥ ११ ॥

जराव्याधिविनिर्मुक्तः सजीवेच्छरदां शतम् ॥
वरामार्कवचूर्णेन सैवेदब्दं जरां जयेत् ॥ १२ ॥

टीका—तो जराव्याधि से रहित होके सौ वर्ष जीवे और त्रिफला और भंगरा के चूर्ण में एक वर्ष लेवे तो वृद्धापन मिटे ॥ १२ ॥

कुष्ठे विषविकारे च निर्गुंडीस्वरसान्विताम् ॥
रसगंधभवां सम्यक्कज्जलीं लेपयेत्सुधीः ॥ १३ ॥

टीका—कुष्ठ में और विष विकार में निर्गुंडीके रससंग पारा, गंधककी कजली लेप करै ॥१३॥

बलिं पंचपलं शुद्धं मार्कवस्वरसैः समैः ॥
घृष्टशुष्कस्य तस्यार्धं शिवाचूर्णं विमिश्रयेत् ॥१४॥

टीका—गंधक बीस तोला, भंगरे का रस बीस तोला, खरल कर सुखावे और उसका आधा हरड़ का चूर्ण मिलावे ॥ १४ ॥

मासयुग्मं निषेवेत माक्षिकाज्यविमिश्रितम् ॥
वार्धक्येन विनिर्मुक्तः शक्तिमान्वीर्यवान्भवेत् ।१५।

टीका—फिर घृत, मधुसाथ दो महीना सेवे तो वृद्धपनासे छूटके शक्तिवंत और वीर्यवंत होवे ॥१५॥

कुष्ठं तैलयुतं भुक्त्वा गंधकं चानुसेचयेत् ॥
अंगे शीततरं नीरं जयेदेव न चान्यथा ॥१६॥

टीका—कुष्ठरोगी तेल साथ गंधक खाके शरीर पर ठंडा पानी सींचै तो आराम हो ॥ १६ ॥

विकारो यदि जायेत गंधकाच्चेत्तदापिबेत् ॥
गोघृतेनान्वितं क्षीरं सुखी स्यादपि मानुषः ॥१७॥

टीका—जो गंधक से विकार हो तो मनुष्य गोघृत दूधसंग पीवे तो सुखी होवे ॥ १७ ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां गंधानुपानकथने चतुर्थी वीचिः ॥ ४ ॥

इति श्रीरमणविहारीकृतामनु० नौकाख्यायां चतुर्थः कोष्ठकः ॥ ४ ॥

अथ केषांचिदुपरसानां विधिः ।

तत्र तावल्लोकनाथो रसः ।

पारदं गंधकं शुद्धं समभागं विमर्दयेत् ॥
टंकणं पारदादर्धं वराटाः स्युश्चतुर्गुणाः ॥ १ ॥

टीका—अथ उपरसविधि—तहां पहले लोकनाथरस लिखते हैं. शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक दोनों समभाग लेके कजली करे और पारा से आधा टंकण क्षारले और पारे से चौगुणी कौडी लेवे ॥ १ ॥

कज्जलीं तां विनिक्षिप्य वराटेषु प्रयत्नतः ॥
टंकणं पेषयेत्सम्यग्गोदुग्धेन विमुद्रयेत् ॥२॥
वराटानां मुखं पश्चाच्छोपयेदातपं विना ॥
गंधादष्टगुणे कंबोश्चूर्णे सर्वं विमुद्रयेत् ॥३॥

टीका—उस कज्जली को कौड़ियों में भरके टंकण को गोदुग्ध में घोट के कौड़ियों के मुखपर मुद्रा देवे फिर कौड़ियों को मुख छायामें सुखावे फिर गंधक से आठगुणे शंखके चूर्ण में उन कौड़ियों को रखके मुद्रा करे ॥ २ ॥ ३ ॥

शरावसंपुटे सम्यक् पाचयेत्स्वांगशीतलम् ॥
पेषयित्वा प्रयत्नेनस्थापयेत्कांचभाजने ॥ ४ ॥

टीका–शरावसंपुटमें गजपुटकी आंच देवे, स्वांगशीतल भये पीछे पीसके कांचकी शीशीमें भर राखै॥४॥

अथानुपानम् ॥ लोकनाथ रसं वाले गृहीत्वावल्लकद्वयम् ॥ विंशन्मरिचचूर्णेन युक्तं दत्वा वरांगने ॥ ५ ॥

टीका—अथ अनुपान–हे वरांगने! छः रत्ती लोकनाथ रसमें बीस मिरच का चूर्ण मिलावे और

रोगी का बल देखके एक रत्ती से छः तक देवे. विना विचारे और विना गुरु कोई रस मात्रा देगा तो पापका भागी होगा ॥ ५ ॥

प्रतिरोगेऽनुपानानि पृथक्कृत्वा वदाम्यहम् ॥
सर्पिषा वातिकं रोगं नवनीतेन पैत्तिकम् ॥६॥

टीका—अब न्यारे २ रोगोंका न्यारा अनुपान कहता हूँ. वातरोगमें घीसे, पित्तमें मक्खनसेदेवे ॥६॥

कफामयं निहंत्येव माक्षिकेण नितंबिनि ॥
यथा हि सुरतो हन्यात्कफरोगानशेषतः ॥ ७ ॥

टीका—हे नितंबोंवाली ! कफरोग में मधुयुक्त देना, यह मैथुन के जैसे सब कफ रोगों को नाश करेगा ॥ ७ ॥

धान्याकं निस्तुषं कृत्वा भर्जयित्वाखुपेपयेत् ॥
तच्चूर्णेन सिताढ्येन लोकनाथोऽरुचिं जयेत् ॥८॥

टीका—धनियां को छिलका दूर करके सेके. फिर पीस के शक्कर मिलाय उसमें लोकनाथ लेवे तो अरुचि जावे ॥ ८ ॥

धान्यच्छिन्नाकषायेण ज्वरं हन्यादसंशयम् ॥
मधुपिप्पलिसंयुक्तोलोकेशो वा जयेज्ज्वरम् ॥ ९ ॥

टीका--धनियाँ और गिलोयके काढ़े में लेवे तो ज्वर जावे. अथवा मधुपिप्पली से लेवे ॥९॥

रक्तपित्तं कफं कासं श्वासं च स्वरवैकृतिम् ॥
वृषवालकषायेण सितामधुयुजा हरेत् ॥ १० ॥

टीका--रक्तपित्त, कफ, कास, श्वास, स्वरभंग इनरोगोंके नाशके वास्ते अरूसा और सुगंधवालाके काढ़े मे मधु और मिश्रीयुक्त लेवे ॥ १० ॥

अनिद्रतामतीसारं ग्रहणीमग्निमांद्यताम् ॥
भर्जितेषज्जयाचूर्णमाक्षिकाभ्यां विनिर्जयेत्॥११॥

टीका—जो निद्रा न आती हो तो और अतीसार, संग्रहणी, मंदाग्नि इन रोगोंमें किंचित् अग्नि में सेंकीभई भांग और मधुसंग लेवे ॥ ११ ॥

संचलाभयाकणारजोन्वितं निषेवयेत् ॥
लोकनाथकं जलं पिबेत्कवोष्णकं ततः ॥
शूलमाशु संजयेदजीर्णमेव तत्क्षणम् ॥
मंजुकोकिस्वरे शरत्सरोजलोचने ॥ १२ ॥

टीका—हे कोकिल के सदृश स्वरवाली ! हे कमलनेत्रे ! जो संचल लवण, हरड़, पीपल, इनके

चूर्ण में किंचित् गरम जल पीवे तो शूल और अजीर्ण को एक क्षण में जीते ॥ १२ ॥

प्लीहानं छर्दिमर्शांसि रक्तपित्तं विनिर्जयेत् ॥
दाडिमीफलनीरेण लोकनाथं निषेवयन् ॥ १३ ॥

टीका—प्लीहा, छर्दि, अर्श, रक्तपित्त इन रोगों में अनार जिसे दाड़िम भी कहते हैं उसके फलके रसमें लेवे ॥ १३ ॥

घृष्ट्वा दूर्वारसैः सार्धं हारिणं शृंगकं जयेत् ॥
लोकनाथयुतं नस्ये दत्त्वा रक्तस्रुतिं न सः ॥१४॥

टीका—जो नासिका से रक्त गिरता हो तो दूब जिसे गुजराती द्रो कहते हैं उसके रसमें हरिण का सींग घिसके और लोकनाथ रस मिला के नास देदे तो रक्त गिरना बन्द हो ॥ १४ ॥

बर्हभस्म कणा कोलमज्जाचूर्णं सिता मधु ॥
लोकनाथयुतं लीढ्वा छर्दिहिक्कां च संजयेत् ॥१५॥

टीका—छर्दि और हिचकी रोगमें मोरपंख की भस्म पीपल बेरकी मींगी अर्थात् बेरकी गुठली का मगज, मिश्री, मधु, इनके संग लोकनाथ रसलेवे ॥१५॥

तेन तेनानुपानेन युक्त्या तं तं गदं जयेत् ॥
लोकनाथेन सद्वैद्यः प्रायश्चित्तौरवानिव ॥ १६ ॥

टीका—और भी रोग रोगके अनुसार अनुपान युक्त करके वैद्य रोगीको देवे तो रोग छूट जाता है जैसे प्रायश्चित्तों से सब पातक छूटता है ॥ १६ ॥

इति लोकनाथरसः ।

अथ वाजिवर्मा रसः ॥ गंधकं पारदं त्र्यूषणं टंकणं दंतिबीजं वरां विष्णुबीजं विषम् ॥ मर्दयेद्भृंगरास्य नीरैर्दिनं रक्तिकैका वटी वाजिवर्मा रसः ॥ १७ ॥

टीका—अथ वाजिवर्मारसः-गंधक, पारा, सोंठ मिर्च, पीपल, टंकण, जमालगोटा, हरड़ बहेड़ा, आमला, हरिताल, वच्छनाग इन सबका सूक्ष्म चूरण भांगरे के रसमें एक दिन मर्दन करके एक रत्ती-प्रमाण गोली करे, यह वाजिवर्मा रस है ॥ १७ ॥

अथानुपानम् ॥ वटीमेकां नरः खादे दुद्धे वा कंजविलोचने ॥ पथ्ययुक्तो गदं हन्याद्यथा रोगानुपानतः ॥ १८ ॥

टीक—अथ इनके अनुपान-हे कमलनयने !

एक अथवा दो गोली रोग बल देखके अनुपानसे दे औरपथ्य से रहे तो रोग मिटे ॥ १८ ॥

वातशूलं क्षयं कासं श्वासं मूलकनीरतः ॥
हंति वा शृंगबेरांबु पिप्पलीमधुतः प्रिये ॥१६॥

टीका—वात शूल, क्षय, कास, श्वास इनमें मूली के पत्र के रसमें वा आदेकारस पीपल मधु युक्त देवे ॥ १६ ॥

वलीपलितरोगघ्नो वाजिवर्मा समाक्षिकः ॥
शिग्रुमूलांबुगोसर्पियुतः शूलं ज्वरं जयेत् ॥२०॥

टीका—वलीपलितमें मधुयुक्त, शूल और ज्वर में सहिंजनकी जड़का रस और गौके घृतयुक्त सहँजन को सेगटा भी कहते हैं ॥ २० ॥

मस्तुना जीर्णकं शीतज्वरमंबुजबीजकैः ॥
पुनर्नवायुतः पांडुं तंडुलांबुयुतो विषम् ॥ २१ ॥

टीका—अजीर्ण में दही के पानी से, शीतज्वर में कमल के बीज संयुक्त, पांडु में पुनर्नवा युक्त, विष में चावल के धोवन से ॥ २१ ॥

तिलपर्णीरसैरक्ष्णोरंजितो तद्गदापहः ॥
शर्कराजाजिसंयुक्तो ज्वरं पित्तभवं जयेत् ॥२२॥

टीका—नेत्ररोग में तिलपर्णी के रसमें अंजन करै. पित्तज्वर में शक्कर जीरासंयुक्त देना ॥२२॥

क्राथेनास्थिगतं वातं देवकाष्ठवचारुजाम् ॥
जातीफलान्वितोऽर्शांसिवातशूलं कटुत्रिकैः ॥२३॥

टीका—अस्थिगत वातमें देवदारु, बच, कूटके काढ़ेमें. कूटको उपलेटा भी कहते हैं. अर्शरोग में जायफल साथ, वातशूलमें त्रिकटुसाथ ॥ २३ ॥

गोमूत्रेण नरः खादन्पुरुषत्वमवाप्नुयात् ॥
पुत्रजीवारसैर्बाले वंध्यास्यादेव गर्भिणी ॥२४॥

टीका—गोमूत्र से पुरुषत्वप्राप्ति हो. पुत्रजीवा जिसे पतिजिया भी कहते हैं उसके रसमें वांझभी गाभिन हो ॥ २४ ॥

लिप्तः सर्पविषं दंशे हंति निंबुरसैस्तुवा ॥
शिरीपस्वरसैर्वाज्येनाऽदनादरसैर्हि वा ॥ २५ ॥

टीका—जहां सर्पने काटा हो उस जगहपर नींबूके रसमें शिरीष के रसमें वा घृतमें वा चौलाई के रसमें घिसके लेप करै ॥ २५ ॥

वचादीप्ययुतो हंति कटिपीडां मरुद्भवाम् ॥
कसनं श्वसनं हंति मधुवासारसान्वितः ॥२६॥

टीका—जो वायु से कमरमें दर्द हो तो बच और अजमोद साथ लेवे. कास श्वास में अरूसे का रस और अजमोद साथ लेवे. कास श्वासमें अरूसे का रस और मधुमें लेवे ॥ २६ ॥

ज्वरं हंति विशालाक्षि सुरसास्वरसांजितः ॥
तथा नित्यज्वरं हंति भक्षितः कन्यकांबुना ॥ २७॥

टीक—हे बड़े नेत्रोंवाली, तुलसी के रससे अंजन करने से ज्वर जावे कुमारीपाठ के रससे खावे तो नित्य ज्वर जावे ॥ २७ ॥

नारीदुग्धेन नक्तांध्यमूर्ध्वश्वासं वरायुतः ॥
हंति दाहयुतं पित्तज्वरमामलकान्वितः ॥ २८ ॥

टीका—स्त्रीके दूधसे अंजन करे तो रतोंधी जावे त्रिफला संग खाने से ऊर्ध्वश्वास जावे. आमला युक्त देने से दाहयुक्त पित्तज्वर जावे ॥ २८ ॥

सेतिकाघृतसंयुक्तः सर्वशूलानिसंजयेत् ॥
शिग्रुमूलांबुगोसर्पिर्माक्षिकैर्वा विचक्षणे ॥२९॥

टीका—हे ज्ञानवाली, सर्व शूलमें घृत और सुवा जिसे सोवा भी कहते हैं उसके संग वा सहिजँनकी जड़का रस वा गौका घृत मधुयुक्तदेवे ॥२९॥

कर्णरोगशिरोव्याधिपीनसार्धावभेदकान् ॥
जयेज्जातीफलेनायं वाजिवर्मा रसोत्तमः ॥३०॥

टीका—कर्णरोग, मस्तकरोग, पीनस, आधा सीसी इनमें जायफल संग देना ॥ ३० ॥

कन्यकातुलसीतोयमाक्षिकैः सूतिकागदम् ॥
दध्ना वा तु गवांमूत्रैरतीसारं जयत्ययम् ॥ ३१ ॥

टीका—सूतिका रोग में घी कुमारिका और तुलसी का रस मधु युक्त देना. अतीसार में दही से वा गोमूत्र से देना ॥ ३१ ॥

तक्रतोयेन वा जातीफलेनांबुरुहेक्षणे ॥
अथवा महिषीमूत्रैर्जयेत्संग्रहणीगदम् ॥ ३२ ॥

टीका—हे कमलोचने, संग्रहणी में छाँछ (मट्ठा) जलसे वा जायफलसे वा भैंसके मूत्रसे देवे ॥३२॥

कासमर्दरसैर्वापि टंकणेनाग्निमांद्यजित् ॥
तथा ब्राह्मरसेनायं बुद्धिदो बुद्धिमत्ययम् ॥३३॥

टीका—मंदाग्निमें कसौंदीके रसमें वा टंकणमें और ब्राह्मीके रसमें लेनेसे बुद्धि को बढ़ाता है ॥३३॥

तांबूलवीटनायं कांतिसंस्कारकोमतः ॥
सुधाक्षारयुतो गुल्मं निर्गुंडीस्वरसेन वा ॥३४॥

टीका—पानके बीड़े में लेनेसे शरीरकी कांतिको करताहै. गुल्ममें चूनाके संग वा निर्गुंडीके रसमें ।३४

यवानिकायुतो हंति सन्निपातं सुदारुणम् ॥
वातामयजाक्षीरैरथवागोघृतेन च ॥ ३५ ॥

टीका—सन्निपात में अजमायन संग वातरोग में बकरी के दूधसे वा घृतसे देना ॥ ३५ ॥

सर्ववातामयान्वायं मार्कवस्वरसैर्जयेत् ॥
वाजमोदाजयायुक्तो वरायुक्तोऽथवा प्रिये ॥३६॥

टीका—अथवा सर्व वातरोगमें भांगरेके रससे वा अजमोदा और भांगसे वा त्रिफला से ॥३६॥

वाश्वगंधारजः क्षौद्रसंयुतः सर्ववातजित् ॥
विष्णुक्रांताजटायुक्तो धनुर्वातामयं जयेत् ॥३७॥

टीका—वा असगंध और मधुके साथ लेवे तो सब रोग दूरहों धनुर्वात में विष्णुक्रांताके मूल संगदेना ३७

कूष्मांडस्वरसैर्मेहं गोदध्ना वा विनिर्जयेत् ॥
गोक्षुरकरजोयुक्तो धातुदोषं निवारयेत् ॥३८॥

टीका—प्रमेहमें भूरा कुम्हड़ाके रससंग, वा गौके दहीसंग, धातुदोषमें गोखरू के चूरनसंग देना ॥३८॥

वर्धयेत्सर्पिषा शुक्रं कृच्छ्रं पूगरसैर्जयेत् ॥
रेचयैरंडतैलेन विद्रधिं गुडयुक् तथा ॥ ३९ ॥

टीका—घृतसंग खाने से धातुवृद्धि करे, मूत्रकृच्छ्र में सुपारी के रससे वा काढ़े से दे. एरंडतेल युक्त लेने से रेचन हो. गुड़संगलेवे तो विद्रधिरोग जावे ॥ ३९ ॥

आर्द्रकस्वरसैर्लिप्तो वृश्चिकस्य विषंजयेत् ॥
स्वेदं भृंगरसैः सार्धं चंपार्नारैर्विगंधताम् ॥ ४० ॥

टीका—जहां विच्छूने डंक मारा हो वहां आदे के रसमें घिसके लेप करे पसीना जादा आता हो तो भांगरे के रससे लेना. देहकी दुर्गंधि मिटाने को चंपा के रससे देना ॥ ४० ॥

तक्रमेहमजाक्षीरैः पित्तं शिवासितान्वितः ॥
अंजितो निंबुतोयेनभूतावेशनिवारणः ॥ ४१ ॥

टीका—तक्रप्रमेह में बकरी के दूधयुक्त, पित्तरोगमें आमला शक्कर संग, नींबूके रसमें अंजन करने से भूत शरीरमें आया होवे तो जावे ॥४१॥

त्रिफलारुबुतैलेन संजयेदुदरामयान् ॥
काकमाचीरसैर्वापि नात्र कार्या विचारणा ॥४२॥

टीका-उदरविकारमें त्रिफलाका रण और एरंड के तेल संग अथवा मकोयके रस संग देना ॥ ४२ ॥

मार्कवस्वरसैः शोफं वा पलांडुरसैर्जयेत् ॥
करंजत्वग्रसैरेवं कृमिरोगं न संशयः ॥ ४३ ॥

टीका—शोफरोगमें भांगरेके रससंगवा पियाज के रस संग, कृमिरोग में करंजकी छाली के रस संग देना ॥ ४३ ॥

शक्तिकृन्नवकंजाच्च नागवल्लीदलांबुना ॥
अजाजीक्षौद्रसंयुक्तउष्णवातविघातकः ॥ ४४ ॥

टीका—पान के रसमें लेने से शक्ति बढ़ाता है. उष्णवात में जीरा और मधु संग देना ॥४४॥

वीटकेन युतः स्वर्यः स्वरजिद्धरकोकिले ॥
आमशूलं मुरायुक्तः पामां गोमूत्रलेपितः ॥४५॥

टीका—स्वरभंग मे पानले बीड़े के साथ, आमशूली में मरोड़फली संग, खाज में गोमूत्र युक्त लेप करे ॥ ४५ ॥

लेपितो भक्षितो लूताविषं भृंगरसान्वितः ॥
तथा पल्लीविषं हंति भक्षितो लेपितोऽम्बुना ॥४६॥

टीका—लूता के विषमें भांगरा के रससे खावे और लेप भी करे. छिपकली के विषमें पानी से लेप करे और खावे ॥ ४६ ॥

उन्मत्तश्वविषं हंति मेघनादरसैरयम् ॥
गोमूत्रेण गुडूच्या वा कुष्ठं कष्टतरं तथा ॥४७॥

टीका—उन्मत्त कुत्तेके काटनेसे जो विष होता है उसमें चौराई के रसयुक्त. कुष्ठ में गोमूत्र से वा गिलोय से देना ॥ ४७ ॥

न मे रोगो भवेदेवं यस्येच्छास्ति वरांगने ॥
गुटीमेकां तथार्धां वा प्रत्यहंसेवयेद्धि सः ॥४८॥

टीका—हे वरांगने, जिसके ऐसी इच्छा हो कि, हमारे कोई रोग न हो. सो इसकी गोली एक अथवा आधी नित्य सेवन करे ॥ ४८ ॥ इति अश्वसमरसः ॥

अथाश्विनीकुमारः त्र्यूषणं फलत्रिकं च नागफेनकं विषं मागधीजटालवंगदंति-बीजतालकम् ॥ टंकणं च गंधकं रसं पृथक्

पिचुं प्रिये चीरमर्धप्रस्थकं गवां विशोषये-
दये ॥४६॥ मूत्रकं गवां विशोष्य भृंगराज-
नीरकं शोषयेद्विघर्षयन्निरंतरं विबंधयेत् ।
वाजिमंत्रसन्निभां वटीमतीब सुन्दरामश्विनी-
कुमार इत्ययं रसो वरांगने ॥ ५० ॥

टीका—अथ अश्विनी कुमारसविधिः–हे वरां-
गने ! सोंठ, मिर्च, पिपल, हरड़, बहेड़ा, आमला,
अफ़ीम, बच्छनाग, पीपलामूल, लवंग, जमालगोटा,
हरिताल, टंकण, गंधक, पारा, ये १५ औषध एक
एक तोला चूर्ण करके बत्तीस तोला गौदुग्ध में खरल
करै. फिर ३२ तोला गोमूत्र में फिर बत्तीस तोला
भांगरे के रसमें खरल करके चना प्रमाण गोली
बनावै. यह अश्विनी कुमार रस है ॥ ४६ ॥ ५० ॥

अथानुपानम् ॥ पित्तमेहनाशनो निशायु-
तोऽश्विनीसुतः कृच्छ्रनाशनो यवानिका-
युतो वरांगने ॥ पुंस्त्वसिद्धये हि माक्षिका-
न्वितं निषेवयेद्भिषजान्वितं निषेवयन्
ज्वरं जयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—अथ इसका अनुपान–पित्त प्रमेहमें हल-
दीसंग ले मूत्रकृच्छ्रको अजमायनसंग नपुंसकपना
दूर करने को मधुसंग, ज्वरमें सौंठसंग ॥ ५१ ॥

प्रमेहं तुलसीनीरैस्त्वक्कोलेनास्यगंधताम् ॥
उष्णवातं जयेत्पर्णवीटकेन कणायुजा ॥ ५२ ॥

टीका—प्रमेह में तुलसीपत्र के–रससंग, मुख
दुर्गंध में तजसंग, पानके बीड़े में पीपलयुक्त लेने से
उष्णवात जाय ॥ ५२ ॥

कार्पासस्वरसैः खादन्नरः शीतज्वर जयेत् ॥
सुरसांबुसिताशुंठीयुतएकांतरं ज्वरम् ॥ ५३ ॥

टीका—शीत ज्वर में कपास रससंग, एकतर
ज्वरमें तुलसीका रस, शक्कर, सोंठयुक्त देना ॥५३॥

मरिचाजाजितुलसीरसैस्तार्तीयकं ज्वरम् ॥
भृंगराजरसैरेवं जयेच्चातुर्थिकं ज्वरम् ॥ ५४ ॥

टीका—तृतीया ज्वरमें मिर्च, जीरा, तुलसी के
रससंग, चातुर्थिकज्वरमें भांगरेके रससंगदेना ॥५४॥

पिप्पलीमूलसंयुक्तः प्रतिश्यायं मरुद्व्यथाम् ॥
निंबुनीरैः शिरोगेलेपयेच्चापि भक्षयेत् ॥५५॥

टीका—सरदी लगी हो जिसको जुखाम कहते

हैं उसमें और वातरोग में पीपलमूल संग, मस्तक रोग में नींबू के रससंग खावे, और लेप भी मस्तक में करे ॥ ५५ ॥

प्लीहनमुदरं हंति विशालास्वरसान्वितः ॥
जीर्णज्वरं सितायुक्तः कासं सैंधवसंयुता ॥५६॥

टीका—प्लीहा और उदर रोग में इंद्रायण के रस संग लेवे, जीर्ण ज्वर में शक्कर संग, कास रोग में सैंधवलवण संग ॥ ५६ ॥

जयेद्कक्षदुर्गंधं पीतकस्वरसान्वितः ॥
मंडूकपर्णिकानी रैबुद्धिसंवर्धनो मतः ॥५७॥

टीका—काँखकी दुर्गंध में बबूल के रससंग बुद्धिवृद्धि के वास्ते ब्राह्मी के रससंग ॥ ५७ ॥

जयेज्जातीफलक्काथैरामरक्तातिसारको ॥
वाताभमज्जसंयुक्तः पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः ॥५८॥

टीका—आमातिसार और रक्तातिसारमें जायफल के काढे में, बदाम के मगजसंग पुष्टिकारक और बल बढाने वाला है ॥ ५८ ॥

हरिद्राघृतसंयुक्तः सूतिकागदनाशनः ॥
होराबोल इति ख्यातस्तेनापीह विमिश्रितः ॥५९॥

टीका—सूतिकारोग में हलदी और घृतमें और इसमें हीराबोल भी मिलावे ॥ ५९ ॥

भंगायुक्तो विशालाक्षि परपुष्टस्वरप्रदः ॥
शर्करासंयुतो हन्याज्ज्वरमस्थिगतं प्रिये ॥६०॥

टीका—हे बड़े नेत्रों वाली, जो भंगयुक्त लेवे तो कोकिला का ऐसा स्वर हो. हड्डी में प्राप्त भए ज्वर में शक्कर संग लेना ॥ ६० ॥

कदलीकंदनीरेण शूलं कोष्ठगतं जयेत् ॥
अन्ययोगेषु वैद्येन देयो युक्त्यानुपानकैः ॥६१॥

टीका—कोष्ठगत शूलमें केले की जड़में रस संग और रोगों में वैद्य अपनी बुद्धि से अनुपान युक्त करे ॥ ६१ ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यांमुपरसानुपानकथने पंचमा वीचिः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्रमणविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी टीकाया नौकाख्यायां पंचमः कोष्टकः ॥ ३ ॥

अथ रत्नादिविधिः ।

तत्र वज्रविधिः। तस्य जातिभेदमादौशृणु ॥
वज्रं श्वेतं तथा रक्तं पीतं कृष्णं विदुर्बुधाः ॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्राःक्रमाद्वर्गैरिमे मताः ॥१॥

टीका—अथ रत्नादि विधि-तहां हीरा की विधि, उसकी जाति भेद आदि में सुनो, श्वेत, रक्त पीत, कृष्ण ये चार भेद हीरा के हैं, तहां श्वेत ब्राह्मण, रक्त वर्ण क्षत्रिय, पीत वैश्य और काला शूद्र है ॥ १ ॥

पुंस्त्री नपुंसकं तत्र विज्ञेयं लक्षणैरपि ॥
वृंताकसदृशारेखा बिंदुहीना नराः स्मृताः ॥२॥

टीका—तहां पुरुष, स्त्री, नपुंसक इसमें होते हैं; उनको लक्षणों से जानना, जो बैंगन सरीखा हो और रेखा बिंदु उसमें न हो सो नर है ॥ २ ॥

रेखाबिंदुसमायुक्ताः षट्कोणा प्रमदामताः ॥
त्रिकोणचिह्नसंयुक्तादीर्घास्ते वै नपुंसकाः ॥३॥

टीका-जो रेखा बिंदु संयुक्त छे कोणोंके होंवे स्त्री

हैं जो त्रिकोण और रेखा विंदु युक्त हों वे नपुंसक हैं ॥ ३ ॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठाः श्रेष्ठवंशवरांगने ॥
देहसिद्ध्यै स्मृता नारी नैव कांते नपुंसकः ॥ ४ ॥

टीका—सबमें पुरुष श्रेष्ठ है और देहको सिद्धि के वास्ते स्त्री चाहिये, नपुंसक निरर्थक है ॥ ४ ॥

विप्रो रसायने राजा रोगनाशायकीर्तितः ॥
वैश्यो वादादिसिद्ध्यर्थं वयस्तंभाय शूद्रकः ॥५॥

टीका—ब्राह्मण रसायन में, क्षत्रिय रोगनाश में वैश्य वादादिके सिद्धि के वास्ते है. आयुष्य दृढ़ करने को शूद्र है ॥ ५ ॥

नारी नार्यै प्रदातव्या तथा पंढाय षंढकः ॥
पुरुषो बलवानेष सर्वेषां हितकारकः ॥ ६ ॥

टीका—स्त्री स्त्रीको देना. नपुंसक नपुंक को. पुरुष सबको हित है; क्योंकि, यह बलवान् है ॥६॥

अथ शोधनम् ॥ कंटकारी जटाकल्कगर्भे वज्रं विपाचयत् ॥ कुलत्थकोद्रवक्वाथैर्दोला

यंत्रे दिनत्रयम् ॥ ७ ॥ शुद्धः स्याद्वज्रक-
श्चैनं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ एवं वैक्रांतका-
दीनि रत्नान्येव विशोधयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अथ शोधनविधि–भटकटैया जिसे भूरि-
गणी कहते हैं उसकी जड़की लुगदीमें धरके कोद्रव
और कुलथीके काढ़ेमें दोलायंत्रसे तीन दिन पचावे
तो शुद्ध हो ऐसेही वैक्रांत आदिक शोध लेवे ॥७॥८॥

अथ मारणम् ॥ रामाब्दरूढकार्पासजटां
पिष्ट्वा तदंबुना ॥ नागवल्लिजटां वापि
तन्नीरेण विपेषयेत् ॥ ९ ॥ तत्कल्कमुद्रितं
वज्रं पाचयेद्गजयंत्रके ॥ एवं सप्तपुटैर्वज्रं
पंचत्वमुपजायते ॥ १० ॥

टीका—अथ मारण–तीन वर्ष की कपास की
जड़ उसी के रसमें पीसे. अथवा नागवेल की जड़
उसी के रसमें पीसे. कल्क में संपुट करके गजपुट दे,
ऐसे सात पुटमें हीरा मरता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ गुणाः ॥ आयुष्यं सुखदं बल्यं रूपदं
रोगनाशनम् ॥ अपमृत्युहरं प्रोक्तं रत्नं
वज्रादिकं प्रिये ॥ ११ ॥

टीका—अथ गुण- हे प्रिये, हीरा आयुष्य बढ़ाने वाला है, सुख देने वाला, वल देने घाला, रूपका देने वाला और रोग नाशक है और वज्रादिक सब अप मृत्यु को भी हरने वाला है ॥ ११ ॥

अथाशुद्धदोषाः दाहं पांडुगदं कुर्यात्किलासं पार्श्वशूलकम् ॥ वज्रादिकं रत्नगणं रोग-जालमशुद्धकम् ॥ १२ ॥

टीका—अथ अशुद्धमें दोष–दाह, पांडु, किलास पार्श्व शूल इत्यादि रोगों को अशुद्ध वज्रादिक करते हैं ॥ १२ ॥

अथ शांतिः॥ गोदुग्धेन सितासर्पिर्माक्षिकं दिनहस्तकम् ॥ पिवेद्वज्रादिरत्नोत्थरोगजाल-प्रशांतये ॥ १३ ॥

टीका—अथ शान्ति-मधु, घृत, शक्कर, गोदुग्ध से सात दिन पीवे तो अशुद्ध रत्नादि दोष शांत होते हैं ॥ १३ ॥

अथानुपानम् ॥ कुष्ठनुत्खदिरकाथसंयुता वज्रभूतिका ॥ मक्षिकार्द्रकनीराढ्यावात-व्याधिप्रणाशिनी ॥ १४ ।

टीका—अथ अनुपान—हीरे के भस्म खैर के काढ़े में लेवे तो कुष्ठ जावे. आदेका रस और मधु-संग लेवे तो वातरोग जावे ॥ १४ ॥

पिप्पलीमरिचाढ्येन वृषनीरेण सेवितम् ॥
कासंश्वासं कफं हन्याद्वज्रभूतिरसंशयम् ॥१५॥

टीका—पीपल और मिर्चके चूर्णयुक्त अरूसे के रसमें लेवे तो कास, श्वास, कफनाश करे ॥ १५ ॥

माक्षिकं घृतसंयुक्तं पुष्टिदं ललने मतम् ॥
सूतिरोगं गवां मूत्रैः स्वेदं शर्करयान्तिम् ॥१६॥

टीका—हे प्रिये ! घृत मधुसंग पुष्टिग कारक है. गोमूत्र युक्त सूतिकारोग को हरे. शक्कर साथ स्वेद को हरे ॥ १६ ॥

एवमन्यानि रत्नानि दत्त्वा रोगेषु बुद्धितः ॥
अनुपानानि संयोज्य ज्ञात्वा रोगबलाबलम् ॥१७॥

टीका-ऐसेही और भी रत्न, रोगों में स्वबुद्धि से दे. रोगका बलाबल देखके अनुपानयुक्त करे ॥१७॥

अथ प्रवाले विशेषः ॥ शोधद्वज्रवच्चैनं मारयेच्चापि वज्रवत् अथवा त्वर्कजे क्षीरे मारयेत्कौक्कुटे पुटे ॥ १८ ॥

टीका—अथ प्रवालमें विशेष कहते हैं. शोधन मारण पूर्ववत् अथवा आकड़े के दूधमें कुक्कुटपुट देवे तो भस्म होवे ॥ १८ ॥

अथानुपानम् ॥ कणामाक्षिकाभ्यां लिहेद्यः प्रवालं जयेच्छ्वासकासज्वरं जीर्णसंज्ञम् ॥ तथा कोष्ठगं मारुतं संजयेतभिषग्दुस्तरां चैव हिक्कां निहन्यात् ॥ १६ ॥

टीका—अथ अनुपान-जो मधु पीपल में प्रवाल को सेवे तो श्वास, कास, जीर्णज्वर, कोष्ठगत वात और हिक्का जीते ॥ १६ ॥

तिक्तातिक्तशिवामिश्रं ज्वरं हंत्येव दारुणम् ॥
पक्वरंभाफलेनैव धातुक्षयहरं परम् ॥ २० ॥

टीका—कुटकी. चिरायता. हरड़युक्त ज्वर हरे, पके केला के फलमें धातुक्षय को हरता है ॥२०॥

सितादुग्धयुतं पित्तं गुल्कंदेन उरःक्षतम् ॥
गुल्कंदं मानुषैः ख्यातं नतुगीर्वाणभाषया ॥२१॥

टीका—दूध शक्कर से पित्तको, गुलकंदसे उर क्षत रोगों को जीते. गुल्कंद शब्द प्राकृत भाषा में है, संस्कृत भाषा में नहीं ॥ २१ ॥

नागलतादलवीटकयुक्तं कार्श्यमुरोजघने विनिहन्यात् ॥ कृच्छ्रहरं त्रिफलामधुयुक्तं तंडुलजैश्च हिमैरथवा स्यात् ॥ २२ ॥

टीका—पान के बीड़ा में दुर्बलता को हरताहै. त्रिफला मधुयुक्त मूत्रकृच्छ्र को अथवा चावल के हिमयुक्त मूत्रकृच्छ्र को हरता है ॥ २२ ॥

धातुपुष्टिकरं कांते सिताघृतसमन्वितम् ॥
धारोष्णेन च दुग्धेन प्रदरं दारयत्यपि ॥ २३ ॥

टीका—हे कान्ते, घृत शक्कर युक्त धातु पुष्ट करे धारोष्ण दुग्धयुक्त प्रदर हरे ॥ २३ ॥

मधुशर्करया सुरसास्वरसैर्द्यति मारुतमाशुकरोतिसुखम् ॥ अथि हंति तिशांध्यमिदं सुरसारसमूषकविड्युतमंजनकम् ॥ २४ ॥

टीका—मधु, शक्कर, तुलसीरस युक्त वात रोग हरे मूसे की लेंडी अर्थात् उंदराकी मीगनी और तुलसी रस युक्त अंजन करने से रतौंधी हरता है ॥ २४ ॥

सितोपलार्द्रकरसैः पित्तकासहरं परम् ॥
एवमन्येषु रोगेषु दातव्यं बुद्धिमत्तरैः ॥ २५ ॥

टीका—मिश्री और आदे के रसयुक्त पित्त कास हरता है, ऐसे और रोगों में भी बुद्धिमान् वैद्य देवे ॥ २५ ॥

इति श्रीपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायामनुपानतरंगिण्यां रत्नानुपानकथने षष्ठी वीचिः ॥ ६ ॥

इति श्रीरमणविहारी विरचितायां अनुपानतरंगिणी-टीका० नौ० रत्नविधिकथने षष्ठ. कोष्ठकः ॥६॥

अथौषधानुपानानि ।

तत्र त्रिफलाविधिः ॥ आमलका भयाक्षाः स्युरब्धिभूपञ्चभागिकाः ॥ त्रिफलेयं समाख्याता समभागैस्तु वा त्रिभिः ॥ १ ॥
भक्षिता निशि नेत्रार्तिं निहन्यान्मधु

सर्पिषा ॥ शर्करासंयता मेहं पित्तरोगं घृतान्विता ॥ २ ॥

टीका—अथ औषध अनुपान-तहां त्रिफला विधि आमला ४ चार भाग, हरड़ १ एक भाग, बहेड़ा २ दो भाग, इसको त्रिफला कहते हैं. अथवा तीनों समभाग लेना. वही त्रिफला रात्रिमें घृत मधु-युक्त लेने से नेत्ररोग शांत होते हैं. शक्करयुक्त प्रमेह को और घृतयुक्त पित्तको जीतता है ॥१॥२॥

वातं तैलान्विता हंति कफं माक्षिकसंयुता ॥ तद्रसः क्षौद्रसंयुक्तः कामलां जयतिध्रुवम् ॥३॥

टीका—वातरोगको तैलयुक्त, कफको मधुयुक्त, त्रिफलाका रस मधुयुक्त कामलाको हरता है ॥३॥

वैडंगेन कषायेण खादिरेण विभावयेत् ॥ पृथक् पृथग्विशालाक्षि भृंगराजांबुना त्रिधा ॥ ४ ॥ विशोष्यमासकं सेवेद्वली-पलितनाशनम् ॥ सौंदर्यप्राप्तयेऽर्धाब्दमब्दं खादन् युवा भवेत् ॥ ५ ॥

टीका—त्रिफला चूर्ण को वायविडंग के काढे

और खैरके काढ़े में और भांगरे के रसमें न्यारी २ तीन तीन भावनादे. फिर सुखाके एक महीना बलानुमान सेवे तो वलीपलित रोग नाशहो, सुन्दरता प्राप्ति के वास्ते छे महीना. एकवर्ष सेवनकरे तो वृद्ध भी ज्वान हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ गुडूच्यनुपानम् ॥ छिन्नाचूर्णं तु वा सत्वमनुपानैर्गदं जयेत् ॥ चूर्णं टंकात्तिदुकान्तं सत्वं वल्लाच्च माषकम् ॥ ६ ॥

टीका—अथ गिलोय अनुपान-गिलोय का सत्व अथवा चूर्ण अनुपानयुक्त लेने से रोग हरता है चूर्ण एक टंक से तोले भरतक और सत्व तीन रत्ती से एक मासापर्यंत बलाबल देखके लेना ॥६॥

संजयेत्सितया पित्तं माक्षिकेण कफामयम् ॥
घृतेन वातजान् रोगान् विबंधं तु गुडेन वै ॥७॥

टीका—शक्कर युक्त पित्त रोग और मधुयुक्त कफरोग, घृत युक्त वात रोग, गुड़ युक्त विबंध को हरता है ॥ ७ ॥

रुबुतैलेन वातास्रं शुंठ्याचैवामवातकम् ॥
गुल्मं चैवोदरं रोगं जयेच्छुंठ्येव सत्वरम् ॥८॥

टीका—एरंड तेलयुक्त वातरक्त, सोंठयुक्त आमवात और गुल्म और उदररोग हरता है ॥ ८ ॥

तक्रेण मर्मजं रोगं माहिष्याज्येननेत्ररुक् ॥
शमं यांति तथा सर्वेंगदाः शीतांबुना प्रिये ॥९॥

टीका—छाँछयुक्त मर्मस्थान के रोग, भैंसके घृतमें नेत्र रोग और शीतल जलयुक्त सेवन करने से सर्व रोग जाते हैं ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतः सर्वेषामनुपानानि ॥ अनुपानमहं वक्ष्ये सर्वसाधारणं रुजाम् ॥ शांत्यै धातूपधातूनामौषधीनां विचक्षणे ॥ १० ॥

टीका—अथ सामान्य से सर्व रोगों में सर्वौषध अनुपान—हे प्रिये, मैं सर्व रोगों की शांति के वास्ते सर्व धातु उपधातु और औषधियों का साधारण अनुपान कहता हूँ ॥ १० ॥

माक्षिकेण लिहेत्कृष्णां ज्वरे च विषमज्वरे ॥
त्रिदोषे शृंगबेरस्य रसं माक्षिकसंयुतम् ॥ ११ ॥

टीका—ज्वरमे और विषमज्वर में मधुपिप्ली, त्रिदोष में आदेका रस और मधु ॥ ११ ॥

कटुत्रिकरजोयुक्तं सिंहास्यस्वरसं लिहेत् ॥
कासश्लेष्मविकारस्य शांतिः स्यान्नवयौवने ॥१२॥

टीका—हे तरुणी, त्रिकटुचूर्णयुक्त अरूसे का रस लेवे तो कास, कफरोग शांत हो ॥ १२ ॥

ज्वरे च पुनरायाते रेणुमेघकिरातकम् ॥
जीर्णज्वरहरा श्यामा मधुनामधुराधरे ॥ १३ ॥

टीका—हे मधुर अधरवाली, जो ज्वर गए पीछे फिर आवे तो पित्तपापड़ा, नागरमोथा और चिरायता देवे और जीर्ण ज्वर को हरने वाली मधुयुक्त पीपल है ॥ १३ ॥

तक्रं संग्रहणीरोगे कृमिरोगे विडंकम् ॥
वह्निभल्लातकौ तद्वत्प्रियेऽर्शस्सु प्रयोजयेत् ॥१४॥

टीका-संग्रहणीमें मट्ठा, कृमिरोगमें वायविडंग, अर्शरोगमें चित्रक और भिलवा देना ॥ १४ ॥

पांडुरोगे च मंडूरं क्षये चैव शिलाजतु ॥
भार्ङ्गीविश्वौषधे श्वासे शूले हिंगुघृतान्वितम् ॥१५॥

टीका—पांडुरोगमें मंडूर, में शिलाजीत, श्वास में भारंगी और सोंठ, शूलमें घृतयुक्त हींग ॥ १५ ॥

सितायुक्ता वरा मेहे वा निशा वा सितामलम् ॥
तृष्णायामग्निसंतप्तहेमतापितजीवनम् ॥ १६ ॥

टीका—प्रमेह त्रिफला मिश्रीयुक्त अथवा हलदी

अथवा मिश्रीयुक्त आमला तृषा में तप्तसोने का बुझाया पानी ॥ १६ ॥

लोहनिर्वापितं नीरं ज्वरे तृष्णा समन्विते ॥
करंजो रुबुतैलाढ्यं गोमूत्रं चामवातके ॥१७॥

टीका—तृषायुक्त ज्वर में तप्तलोहका बुझाया पानी, आमवातमें करंज एरंडतैलयुक्त गोमूत्र ॥१७॥

वरा कृष्णारजः प्लीह्नि विषे हेमशिरीषकम् ॥
प्रदेयं भिषजा नित्यं कासेक्षुद्राकटुत्रिकम् ॥१८॥

टीका—प्लीहामें त्रिफला पीपरका चूर्ण, विष खाएको सोना और शिरीष का रस, कासमें भूरींगणी और त्रिकटुचूर्ण देना ॥ १८ ॥

वायुरोगेऽनुपानं स्याद्यवनेष्टाज्यकौशिकम् ॥
आकल्लकवचाक्षौद्रैरपस्मारं जयेत्प्रिये ॥ १९ ॥

टीका—वातरोग में लहशुन, घी, गुग्गुल, अपस्मारमें अकरकरा, बच मधुयुक्त देना ॥ १९ ॥

प्रदेयं प्रदरे रोध्रं रेचनं चोदरामये ॥
वातरक्ते स्मृताच्छिन्नेरंडतैलसमन्विता ॥२०॥

टीका—प्रदरमें लोध्र, उदररोग में रेचन, वातरक्तमें एरंडतेलयुक्त गिलोय देना ॥ २० ॥

आर्दिते माषवटका नवनीतसमन्विताः ॥
मधुनीरे समे मेदो गदे शस्ते न संजयः ॥२१॥

टीका—अर्दितरोगमें उड़द के बड़े और माखन, मेदरोगमें मधुजल समभाग ॥ २१ ॥

अरुचौ बीजपूरं वा दाडिमं वा प्रदीयताम् ॥
कौशिकाऽथ्या व्रणे शोके सुराद्राक्षाम्लपित्तके ॥२२॥

टीका—अरुचिमें बिजौरा वा दाडिम व्रणमें त्रिफला, गुग्गुल, शोकमें मदिरा, अम्लपित्तमें द्राक्षा ॥२२॥

शतावरी च कूष्मांडस्वरसो मूत्रकृच्छ्रके ॥
सितोपलावराचूर्णं नेत्रातंके सुपूजितम् ॥ २३ ॥

टीका—शतावर और भूराकुम्हड़ाका रस मूत्रकृच्छ्रमें, नेत्ररोगमें मिश्रीयुक्त त्रिफलाचूर्ण ॥२३॥

अनिद्रे माहिषं दुग्धमुन्मादे जीर्णकं घृतम् ॥
कुष्ठे च खदिरक्वाथो लाजाश्छर्दिगदे हिताः ॥२४॥

टीका—निद्रा न आती हो तो भैंसका दूध, उन्मादमें जीर्ण घृत, कुष्ठ में खैरका क्वाथ, उलटी में धान की लाई ॥ २४ ॥

वातेऽजीर्णगदे निद्रा वा शिवांऽभोजनं जलम् ॥
पेयं तीक्ष्णतरं नस्यं गदेजत्रूर्ध्वसंभवे ॥ २५ ॥

टीका—अजीर्ण में निद्रा वा हरड़ वा लंघन वा जल, जत्रु कहते हैं गले के आगे जो हड्डी है उसको जो गले से नीचे दोनों तरफ है उसके ऊपर के रोगों में तीक्ष्ण औषध का नास सूंघना ॥ २५ ॥

मूर्च्छासु शीतलोपायं पार्श्वशूले तु पौष्करम् ॥
कार्श्ये मांसरसो दुग्धं वा त्वश्मर्यांशिलाजतु ॥२६॥

टीका—मूर्च्छा में शीतल उपाय, पसुली की शूलमें पुष्करमूल, दुर्वलता को मांसका जूस अथवा दूध, पथरी में शिलाजीत ॥ २६ ॥

रसो मूलकपात्राणां सूर्यक्षारसमन्वितः ॥
मूत्ररोधे तु हिक्कायाम् सितया सह मागधी ॥२७॥

टीका—मूत्ररोध मूलीके पत्तेका रस और सोरा खार, हिचकी में मिश्री और पीपल देना ॥ २७ ॥

शीते सर्पलतापत्रस्वरसो मरिचान्वितः ॥
घृततीक्ष्णान्वितो वाते तरसास्वरसः प्रिये ॥२८॥

टीका—हे प्रिये. शीतमें नागवेली के पान का रस और मिर्च वात में घृत और मिर्च युक्त तुलसी रस देना ॥ २८ ॥

कविप्रिया ॥ सत्कुलोद्भव प्रभो स्वकीयकं कुलादिकम् । ब्रूहि येन ते पिता महादिकान् जनाः किल ॥ संविदेयुरंबुजाक्ष काव्यकृन्नरोत्तम । पृच्छतीं तव प्रियामयि प्रजेश सत्वरम् ॥ २९ ॥

टीका—अथ काव्यकर्ता को कुलपरंपरा वर्णन करते हैं-तहां कविप्रिया पूँछती है कि हे महाराज! आप अपनी परंपरा वर्णन करो, जिससे आपके पितामहादिकों को लोग जाने, हे कमलनेत्र! हे काव्य करने वाले, हे नरश्रेष्ठ, हे प्रजाके स्वामी पूछने वाली तुम्हारी प्रियाको जलदी कहो ॥२९॥

कविः ॥ अभूद्भागीरथीतीरे कान्यकुब्जद्विजोत्तमः ॥ बालाशर्मा हि सुकुलः पौंडरीकादियज्ञकृत् ॥ ३० ॥

टीका—अथ कवि स्वयं प्रिया से कहता है. हे वरारोहे, भागीरथी गंगाजी के किनारे ज्ञातीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणोत्तम बालाशर्मा सुकुल होते भए. "सुकुलका अर्थ-(सुष्टुकुलो यस्य सः

सुकुलः] सुन्दर है कुल जिसका सो सुकुल'' ऐसे बाला शर्मा और पौंडरीकादि यज्ञ के करने वाले भये ॥ ३० ॥

वीरेश्वरोऽभवत्तस्य काशिनाथश्च तत्सुतः ॥
तदन्वयेऽभवद्वैद्यो धन्वंतरिरिवापरः ॥३१॥
गोवर्धन इति ख्यातः सदैवारोग्यवर्धनः ॥
तापीरमः सुतस्तस्य वैद्यशास्त्रविशारदः ॥३२॥

टीका—उनके पुत्र वीरेश्वर हुए. उनके काशीनाथ हुए. उनके वंशमें गोवरर्धनसुकुल वैद्य हुए सो जैसे दूसरे धन्वतरि हुए. सो सदा आरोग्य के बढ़ाने वाले उनके तापीराम सुकुल वैद्यशास्त्र में चतुर भए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सीतारामोऽभवत्तस्य सर्वशास्त्रविदांवरः ॥
तत्सुतोऽहं वरारोहे लक्ष्मीर्मातास्ति मद्धिता ॥३३॥

टीका—उनके सीताराम सुकुल सर्वशास्त्र में प्रवीण हुए. उनका मैं पुत्र हूं मेरी माता लक्ष्मी है, सो मेरा हित करने वाली है ॥ ३३ ॥

रघुनाथप्रसादोऽहं सत्कवींद्रसुखप्रदाम् ॥
अकरवं तव प्रीत्या अनुपानतरंगिणीम् ॥३४॥

टीका—मेरा नाम रघुनाथप्रसाद है. मैंने तुम्हारी प्रीति से वास्ते सत्कवियों के सुख देने वाली अनुपानतरंगणी कहता भया ॥ ३४ ॥

अनुपानजलैः पूर्णा स्वच्छनीरैर्यथानदी ॥
सुसमाप्तेयमब्जाक्षि श्रीपतेः सुप्रसादतः ॥३५॥

टीका—यह अनुपानरूप जलसे भरी हुई तरंगिणी नाम ग्रंथरूपी नदी है जैसे स्वच्छ जलसे भरी हुई यह तरंगिणी लक्ष्मीनाथ की कृपा से समाप्त हुई ॥ ३५ ॥

यत्फलं तरंगिणीकृतेऽस्ति सत्कुल तत्फलं
रमेशपादपद्मयोः समर्पितम् न वै जगद्धितं-
करी भवेदियं सदा सपूजिता भिषग्वरेषु
तिष्ठताद्भुवि ॥ ३६ ॥

टीका—जो फल इस तरंगिणी के रचने से हुआ मैंने लक्ष्मीपति नारायण के चरण कमल में अर्पण किया; इसकरके यह अनुपानतरंगिणी जगत के हित करने वाली हो और सदा श्रेष्ठ जनोंमें सराही जावे और श्रेष्ठ वैद्योंमें बहुत काल पृथ्वी में स्थित रहे ॥३६॥

इति श्री मत्पंडितरघुनाथप्रसादविरचितायाः-
मनुपानतरंगिण्यामुपरसानुपानकथने
सप्तमी वीचिः ॥ ७ ॥

इति श्रीमद्रसिकविहारीकृतायां अनुपानतरंगिणी
टीकायां नौकाख्यायां सप्तमः कोष्टकः ॥ ३ ॥

Printed by M L Gupta
at the H. D Electric Printing Works, Muttra.